ॐ शिवः ।

शरीर से

अमर होने का उपाय

ग्रन्थकर्त्ता

योगसाधन, शान्तिदायी-विचार और वेदान्त-सिद्धान्तादि दार्शनिक ग्रन्थों के रचयिता साप्ताहिकपत्रिका ज्ञानशक्ति के सम्पादक गोरखपुरनिवासी श्रीमान्

पं० शिवकुमारजी शास्त्री ।
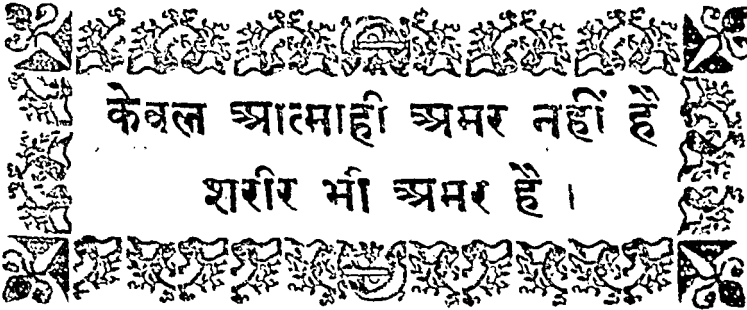
प्रकाशक

ज्ञानशक्ति प्रेस, गोरखपुर ।

द्वितीयबार १००० मूल्य १॥)

केवल आत्माही अमर नहीं है
शरीर भी अमर है।

समर्पण

—०::※::०—

उनको

जो सत्य के जिज्ञासू

और

अत्यन्त स्वतन्त्र विचार

के हैं ।

शिवकुमार शास्त्री

यह संसार वैसा ही है जैसा हमने बनाया है। संसार के रचयिता और अपने भाग्य के विधाता हम स्वयम् हैं।

शरीर से
अमर होने का उपाय

हमने ईश्वर का दर्शन किया है। पर इन आंखों से नहीं; ज्ञान से। बाहर नहीं; भीतर। अलग नहीं; अपने में। वह अलग नहीं है; वह हमारी आत्मा है।

विषय-सूची ।

प्रथम संस्करण की

भूमिका

आज हम जिस विषय को लिखकर पुस्तक के रूप में संसार के सामने रख रहे हैं शायद आज तक किसी ने इस विषय को इस तौर पर पुस्तक के रूप में लिखकर संसार के सामने अब तक नहीं रक्खा है। यद्यपि इस पुस्तक का नाम शरीर से अमर होने का उपाय है तथापि बहुत से लोग इसका केवल नाम सुनकर यही सोचेंगे कि इसमें भी आत्मा की अमरता लिखी गई होगी; क्योंकि जनता शरीर से अमर होना असम्भव मानती है। नये २ आविष्कारों तथा यन्त्रों को देखकर लोग कह उठते हैं कि मनुष्य केवल मौत से हारा है नहीं तो सब कुछ कर सकता है। पर इस पुस्तक को पढ़कर पाठकगण आश्चर्य के साथ कहेंगे कि अब संसार में असम्भव कुछ नहीं रहा और मृत्यु भी मनुष्य के वश में हो गई।

बहुत से लोग तो यह भी सोचेंगे कि इस उपाय में औषधि या कठिन योगसाधनादि लिखे गये होंगे जिसका करना सर्व साधारण के लिए कठिन ही नहीं किन्तु असम्भव होगा। पर पुस्तक को एक बार आद्योपान्त पढ़ लेने पर यह सब सन्देह दूर हो जायगा और पाठकगण स्वयम् कहेंगे कि इससे सरल उपाय संसार में कोई नहीं हो सकता।

सम्भव है कि बहुत से लोग इसे पढ़कर इस सिद्धान्त को अस्वीकार करते हुए इसके अनुसार न चलें, फिर भी उन्हें इसको पढ़ने से कुछ न कुछ लाभ अवश्य होगा।

कुछ विद्वानों ने इस पुस्तक का कुछ अंश पढ़कर हमसे कहा था कि इस पुस्तक को आप तब तक नहीं छपा सकते जब तक आप स्वयम् अमर न हो लें। हमने इसका उत्तर दिया था कि जब तक हम जीते हैं तब तकआप यह कैसे कह सकते हैं कि हम अमर नहीं हैं। हमारी समझमें १०० दो सौ वर्ष इस ज्ञानसे संसार को वंचित रखना उचित नहीं है। हम किसी उत्तम बात को जान कर उसे गुप्त रखने के पक्षपाती नहीं हैं। हमारी समझ में संसार की इससे बड़ी हानि हुई है।

हम इसको बहुत बड़ी बनाना चाहते थे और अभी अवकाश के समय बराबर लिखते जाते थे; क्योंकि अभी बहुत सी बातें इस विषय की हृदय में पड़ी हुई हैं। पर हमारे बहुतेरे मित्र तथा इसके प्रेमी इसे देखने के लिये अकुला उटे। अतः आवश्यक विषयों को थोड़े में लिखकर इस ग्रन्थ को छोटे आकार में ही पूर्ण करने का यत्न किया है। पुस्तक छोटी अवश्य है पर आवश्यक विचार सभी आ गए हैं।

इस पुस्तक का थोड़ा २ नित्य पाठ करते रहने से बडा लाभ होगा। इस विचार ने भी हमें इस ग्रन्थ को छोटा रखने के लिए विवश किया। आत्मा को अमर पढ़ते २ संसार की विद्वन्मण्डली थक सी गई है। अतः यह पुस्तक विद्वन्मण्डली के लिए मन बहलाने का भी काम देगी।

निवेदक

शिवकुमार शास्त्री।

द्वितीय संस्करण की

भूमिका

आखिर इतने दिनों के वाद वह समय भी आगया कि हम संसार के सामने "शरीर से अमर होने का उपाय" नाम की पुस्तक का द्वितीय संस्करण भी उपस्थित कर रहे हैं। हमारे पास अभी तक पुस्तक वेंचने का कोई उत्तम साधन भी नहीं है। ग्रंथ नवीन विचार का है अतः पुस्तक विक्रेतागण इसे वेंचना और रखना शायद एक तरह का पाप समझते हैं। यह सब होने पर भी जिस पुस्तक के ९९ प्रतिशत मनुष्य विरोधी हैं वह यदि इतने दिनों में इतना विक जाय तो वहुत है। इस संस्करण में ६-७ अध्याय और वढ़ा दिये गए हैं। यह ज्ञान इस वीसवीं सदी का एक नवीन और आश्चर्य्य जनक आविष्कार है और समय यह भी वतलावेगा कि इस आविष्कार ने मनुष्य जाति का जितना उपकार किया है उतना दूसरे किसी आविष्कार से न हुआ और न आगे होगा।
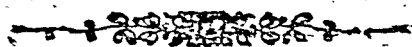
सचित्र

योगसाधन

जिसे प्रत्येक गृहस्थ बिना गुरुके भी कर सकेगा।

आसनों के पचासों सुन्दर चित्रों के साथ योग विषय पर ऐसा सरल, सुबोध और सर्वाङ्ग पूर्ण ग्रन्थ आप को कहीं नहीं मिलेगा। यदि आपको सर्वदा नीरोग, युवा, सुन्दर, बलवान् और मेधावी बना रहना है तो योग पर इस विशाल ग्रन्थको अवश्य पढ़िए। मूल्य केवल २॥) ढाई रुपया।

पता:—मैनेजर ज्ञानशक्ति प्रेस,
गोरखपुर।

शरीर से अमर होने की

सम्भावना ।

बहुत से लोग तो शरीर से अमर होने को इतना असम्भव समझते हैं कि इस लेख को पढ़ना भी अनुचित समझेंगे । पर हम कहते हैं कि ऐसे बहुत से लोग होचुके हैं और हैं जो कहते हैं कि असम्भव कोई वस्तु नहीं । जो हो, पर इस सिद्धान्त को हृदय में लाते ही हृदय में बड़ा बल आजाता है। असम्भव २ को जपनेवाले हृदय के बहुत ही दुर्बल और साहसहीन होते हैं। असम्भव शब्द को सचमुच शब्दकोश से निकाल देना चाहिए ।

अमर होना असम्भव क्यों है ? लोग कहते हैं कि दीपक तभीतक जलसकता है जबतक उसमें तेल है। तेल गया दीपक की ज्योति गई। दीपज्योति को जलाने वाली चीज़ तेल है । पर इस जीवनज्योति को जलाने वाली कौनसी चीज़ है ? सबजानते हैं कि जीवनज्योति को जलानेवाला तैल आत्मा है, रूह है, या मन है। तैल की तरह शरीर रूपी दीपक में जब तक आत्मा वर्त्तमान है तबतक जीवन-ज्योतिका प्रकाश प्रज्वलित है । बात ठीक है । पर यह सरसो, तिल वा मिट्टी का तैल जलकर घट जाता है, किन्तु जो आत्मा अनादि,

अविनाशी और अनन्त है उसे कौन मिटा सकता है; उसे कौन जला सकता है ?

अनन्त का अन्त नहीं होता, अविनाशी का नाश नहीं होता और अव्यय का व्यय (खर्च) नहीं होता । आत्मा अव्यय है वह तैलकी तरह कभी घट नहीं सकता । व्यय, खर्चको कहते हैं । कोई चीज घटती तब है जब उसमें से खर्च होता है । पर अव्यय अव्यय है । वह अनन्त कालमें भी नहीं घट सकता । अतः जीवनज्योति जिसका आधार आत्मारूपी तैल है वह कभी नहीं बुझ सकती ।

जिसशरीर कातैल आत्मा है—जिस शरीर के रोम २ में अविनाशी, अमर, निर्विकार और निरामय आत्मा या परमात्मा व्यापक है-उसशरीर को नाश करने में रोगादि समर्थ नहीं हो सकते । आमय कहते हैं रोग को । आत्मा और परमात्मा दोनों निरामय हैं, नीरोग हैं और निर्विकार हैं । यह निर्विकार, निरामय, नीरोग, निरंजन, अमर और अविनाशी तत्व जिस शरीर के रोम २ में व्यापक है उसका मरनाही असम्भव है अमर होना नहीं ।

दीपक की ज्योति तो वायु के लगने से भी बुझ जाती है पर आत्मा की ज्योति को वायु भी नहीं बुझा सकती । आत्मा को न शस्त्र काट सकते, न अग्निजला सकती और न वायु बुझासकती है ।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुतः॥
गीता अ० २ श्लोक २३॥

गीता के उपर्युक्त श्लोक का भी यही अर्थ है। तात्पर्य यह है कि यदि मनुष्य की जीवन ज्योतिका तेलही वा आधारही अमर अजर और अव्यय है तो ऐसी जीवनज्योति सर्वदा जगमगाती रहे तो कोई आश्चर्य्य नहीं इसका न बुझना असम्भव नहीं है, बुझनाही असम्भव है।

आत्मा ज्ञानमय और मनोमय है। मन विश्वास रूप है। विश्वास भी वही होता है जैसा अनुभव और ज्ञान होता है। अतः जिसका ज्ञानही विकारवान् है, जिसका मनही अविश्वास के विकार से युक्त है, अथवा, जो यह दृढमाने हुए और विश्वास किए हुए है कि अमर होना असम्भव है उसके लिए अमर होना अवश्य असम्भव है। पर विचार करने से मालूम होता है कि वह ज्ञान दूषित और विकारवान है। सच्चा ज्ञान कहता है कि अविनाशी से उत्पन्न हुआ यह शरीर और संसार अविनाशी है। जिस शरीर के रोम २ में, अंग २ में और अणु २ में वही अविनाशी, निर्विकार, अजर और अमर आत्मा व्यापक है वह कभी मर नहीं सकता। मरता है अवि-श्वाससे वा इस सच्चे ज्ञान के अभाव से।

लोग कहेंगेकि इसी गीता में कहा है कि,

"जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवंजन्ममृतस्य च"।
तस्मादपरिहार्य्येर्थे' नत्वंशोचितुमर्हसि॥

जिसका जन्म हुआ है वह मरेगा और जो मरा है वह अवश्य जन्म लेगा। पर यह नियम किसके लिए है? जिसे सच्चा और वास्तविक ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ है । ज्ञानियों और योगियों के लिये इस का नियम नहीं है; क्यों कि ज्ञान से मोक्ष का होना सभी मानते हैं। मोक्ष की अवस्था में मनुष्य जन्म मरण के बन्धन से छूट जाता है। यह सभी मानते है कि मुक्त मनुष्य फिर जन्म नहीं ग्रहण करता। यदि जन्म मरण का बन्धन मुक्त के लिए भी रहजाता तो मरने के बाद मुक्त मनुष्य को भी जन्म लेना (ध्रुवं जन्ममृतस्यच,) के अनुसार आवश्यक होजाता। पर मुक्त का जन्म नहीं होता इसे वेद, पुराण और शास्त्र सभी मानते हैं। गीता में अन्तमें यही कहा है । अट्टारहवां अध्याय देखिए—

मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतंपदमव्ययम् ॥ ५६ ॥

मेरे प्रसाद से अर्थात् आत्मा के सच्चे ज्ञान से मनुष्य उस मोक्ष पद को प्राप्त होता है जो शाश्वत् (नित्य वा अविनाशी) और अव्यय है । अर्थात उस पद और अवस्था का नाश, परिणाम वा परिवर्तन नहीं होता। इसका भी मतलब साफ साफ यही है कि वह सब प्रकार के जन्म मरणादि वाली परिवर्त्तनशीला अवस्था से छूट कर मुक्त हो जाता है। यदि जन्म मरणका बन्धन लगा ही है तो मुक्त का कुछ अर्थ ही नहीं रह जाता अतः इसबात को कम से कम हिन्दूमात्र जानते हैं कि मुक्त जन्म-मरण के बन्धन से छूट जाता है।

अब जानना यह है और यह प्रसिद्ध भी है कि मुक्त दो प्रकार के होते हैं: एक जीवन मुक्त दूसरे विदेह मुक्त। मरने के बाद जो मुक्त होता है वह जीव विदेह मुक्त कहलाता है। पर जो शरीर रहते ही सच्चेज्ञान को प्राप्त कर मुक्त हो जाता है वह जीवन मुक्त है। और मुक्त होने पर जैसे जीव जन्म के बन्धन से छूट सकता है उसी तरह मरण के बन्धन से भी छूट सकता है। मुक्ति जन्म मरण दोनों से छुड़ाती है। जीवनमुक्त का मरण नहीं होगा अतः जन्म भी नहीं होगा और सहज में ही जन्ममरण से छूट जायगा। हमारे इस कथन से यह बात अच्छी तरह समझ में आगई होगी कि जन्म मरण का बन्धन कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसे कोई तोड़ नहीं सकता। अतः इसे मुक्त या योगी कोई भी यदि तोड़ सकता है तो अमर होना असम्भव कैसे है?

वेदों में तो अनेक स्थलों पर कहा है कि उसे जानकर (तमेव विदित्वाति मृत्युमेति) मनुष्य मृत्यु को जीत लेता है। यजुर्वेद में "उर्वारुकमिव बन्धानान् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्" कहा हुआ है। इस मंत्रका अर्थ है ईश्वर मृत्यु के मुख से मुझे छुड़ावो पर अमृतत्व से नहीं। यजुर्वेद के श्वेताश्वतरोपनिषद् में तो साफ कहा है कि,

"पृथिव्याप्यतेजोऽनिलखे समुत्थिते,
पञ्चात्मके योगगुणे प्रवृत्ते।
न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः,
प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्॥

पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पांचों से बने हुए इस शरीर में यदि योग के गुण प्रवेश करेंगे तो उस योगी के निकट न बुढ़ापा आवेगा, न रोग आवेगा और न मृत्यु आवेगी। इस विषय के वेदों में अनेक मन्त्र हैं। पर इस छोटे से लेख में उन सबको उद्धृत करना अनावश्य है। वेद तो डंकेकी चोट से शरीर को अमर करना और मृत्यु को जीतनेकी सम्भावना मानते हैं। पर इतने ही से या केवले वेद गीता और पुराणों के कथनमात्र से इस बीसवीं सदी में कोई सिद्धान्त कोई मनुष्य नहीं मान सकता। यदि मजहबी दुनिया के मान लेने से संसार में कोई बात मान लीजाती तो हमारा केवल इतनाही कहदेना पर्य्याप्त होता कि प्रत्येक मजहब में मार्कण्डेय, लोमश, अश्वत्थामा और कागभुसुण्डि के समान अनेक प्राणी अमर माने जाते हैं अतः जीवधारियों का अमर होना असम्भव नहीं है। नहीं इतनेही से बात समाप्त नहीं होती। इस बीसवीं सदी में अनेक प्रमाणों की आवश्यकता है। इस बीसवीं सदी और पदार्थविज्ञान के युगमें मनोबल और इच्छाशक्ति का भी खूब अनुसंधान हुआ है और ओषधियों से अधिक अब लोगों का विश्वास रोग दूर करनेमें इच्छा-शक्ति, विश्वास और मनोबल पर है। इस जमाने में इसको मानने वाले करोड़ों मनुष्य है कि इच्छाशक्ति, मनोबल और विश्वास से हर प्रकार के रोग और वृद्धावस्था भी दूर की जा सकती है। केवल दूर की जा सकती है यही नहीं, इससे दूरकर दिखा गया है और इस विषय के अनेक चिकित्सालय खुल गए हैं

हम कहते हैं कि यदि मनोबल, इच्छाशक्ति ज्ञानशक्ति और विश्वासबल से रोग और बुढापा दूर की जा सकती है तो मृत्यु भी दूर की जासकती है और यह असम्भवनहीं है। अबयह समय आगया है कि इसकी सम्भावना मानी जाय।

यदि आत्मा और मन के अनन्तबल और इसके अजर, अमर, अविनाशी और निर्विकार रूपका पता लग जाय तो मनुष्य चुटकी बजा कर मृत्यु को जीत सकता है। मनका शरीर पर बड़ा प्रभाव है। शरीर के भीतर बैठा हुआ मन ही एक एसा पदार्थ है जो शरीर की अंगुली २ को पोर २ को; अंग २ को; हाथ पैर को, इतनाही नहीं इसके अणु अणु को, नचा रहा है। यहां मन में किसी बात का संकल्प हुआ कि उधर शरीर में उसका कार्य्य आरम्भ होगया। शरीर के सारे कल पुर्जों और अंगप्रत्यंग का चलाने वाला मन है। बाहर भी जो बड़े २ इञ्जिनऔर कल कारखाने काम कर रहे हैं वह केवल मनके प्रताप से। किसी के मन ने ही सोच कर इनका जन्मभी दिया है। कारखाना खुला और मनन करने वाले मनुष्यही अब भी उन्हें बना रहे हैं। बन जाने पर भी मनुष्यों के ही चलाने पर इञ्जिन चलता और रोक देनेपर रुक जाता है। अतः संसार की सारी शक्ति जो देखने और सुनने में आती है वह मन और आत्मा की है। पर इञ्जिन जड़ हैं। इसके पुर्जे जो टूट जायंगे आपसे आप नहीं जुड़ सकते। सूखे काठ का थोड़ा सा काट दीजिए वह फिर आपसे आप

नहीं जुड़ सकता। पर किसी हरे वृक्ष को जब तक उसमें जान है और वह सूख नहीं गया है काट दीजिए उसमें जुड़ने का कार्य्य आपसे आप आरम्भ हो जाता है। शरीर में बड़े बड़े और गहरे घाव हो जाते हैं पर यदि शरीर में आत्मा है तो वह घाव भरने लगता है और भर जाता है। वेजान और मृतक शरीर पर हजार औषधि लगाइए उसका घाव नहीं भरेगा। आत्मा और मन का बल अव्यय और अनन्त है। अतः थका हुआ शरीर आत्मवल से फिर थोड़े देरमें ताजा होजाता है। आत्मा और मन अव्यय और अनन्तवल वाले हैं। आत्मा और मन न कभी घिसता; न पुराना होता और न मरता है। अतः जब तक यह शरीर में है तबतक शरीर को भी न घिसने देगा; न वृद्ध होने देगा और न मरने देगा। पर मनुष्य के मनका रूप और बल उसके विश्वासके अनुसार बढ़ता घटता रहता है। विश्वास से मन की अवस्था में उसी क्षण परिवर्त्तन होने लगता है। और मनकी अवस्था के परिवर्त्तन का प्रभाव शरीर पर पड़ता है। लड़के और पशु-पक्षी ज्योंहि मनमें डरे कि मलमुत्रका त्याग कर देते हैं। डर वा भय मनका विकार है। इसका प्रभाव शीघ्रही शरीर की अंतडियों और गुर्दे पर पड़ता है जिसके प्रभावसे यह होता है कि डरा हुआ प्राणी मल मूत्र तक त्याग देता है। अत्यन्त भय और शोकका प्रभाव मस्तिष्क पर इतना पड़ता है कि मनुष्य वेहोश हो जाता है। मनमें अत्यन्त शोक होने से हृदय की गति रुक जाती और मनुष्य मर जाता है। मन द्वारा

श्वासवायु को जहां चाहें लेजाकर रोक सकते हैं। श्वास और मन का सम्बन्ध होने से साधक योगी चाहेतो खून की गति पर भी अपना पूर्ण अधिकार जमा सकता है। अत्यन्त शोक और हर्षसे खून की गति रुकजाती है। लोभ से कफ, क्रोध से पित्त, और काम तथा मोह से वात दोष, की उत्पत्ति होती है। इसतरह शरीर का अणु २ मन के अधिकार में है और मनुष्य अपने मन विश्वास तथा अपनी आत्मा से जैसा चाहे अपने शरीर को बना सकता और रखसकता है।

यद्यपि मन में अनन्त बल है और वह कभी मरने और घिसने वाला नहीं है, पर यदि कोई सच्चा ज्ञान न होने के कारण इसका घिसना वा मरना मानता है तो वह धीरे २ क्षीण होता जाता है और उसका प्रभाव शरीर पर पड़ता है। इसका फल यह होता है कि कुछ दिनों में शरीर वृद्ध होकर मर जाता है। पर, यदि सच्चाज्ञान हो और सच्चेज्ञान से आत्मा और मन के अद्भुत और अनन्तबल का पता हो और यह मालूम हो कि हमारेशरीर के अणु २ में वह आत्मा व्यापक है जो अविनाशी निर्विकार, निरामय, अजर और अमर है तो यदि मनुष्य पूर्ण विश्वास के साथ बुढापा को दूर कर शरीर को अमर करना चाहेगा तो सचमुच वह अजर और अमर होजायगा।

मनुष्य का मरना आवश्यक है इस बात को हृदय से निकाल दीजिए। विश्वास के साथ कहिए कि हम अमर

हैं, नीरोग है, बलवान् हैं और युवा हैं। नित्य इसकी भावना कीजिए। आप थोड़े ही दिनों में प्रत्यक्ष देखेंगे कि इसका शरीर पर अद्भुत प्रभाव पड़ रहा है।

मृत्युको दूर करने का प्राचीन यत्न

मनुष्य का सब से बड़ा शत्रु मृत्यु है। मनुष्य जाति का सबसे बड़ा उपकार इसी को जीतने में है। प्राचीन काल के भी जिन २ मनुष्योंने इस मृत्यु को जीतने और इस संसार क्षेत्र में उसे परास्त करने का यत्न किया है वे यद्यपि आज नहीं हैं और मर गए पर हमलोगों को उनका कृतज्ञ होना चाहिए। कारण यह है कि उन लोगों ने इस लड़ाई के मैदान में मनुष्य जाति के सबसे बड़े शत्रु को परास्त करने और इस तरह से अपनी मनुष्यजाति का बहुत बड़ा उपकार करनेका यत्न किया था।

मृत्यु को जीतने का प्रयत्न बहुत ही प्राचीन काल से होरहा है। संसार में सबसे अधिक प्यारी वस्तु यदि सत्य सत्य कहा जाय तो अपनी जान है। इसके बाद दूसरे नम्बर में मनुष्य जाति का, सोना बनाने का यत्नभी, बहुतही प्राचीन कालसे हो रहा है। यत्न होता चला आता है पर अभी तक सोना बन नहीं सका है। इस यत्न के रास्ते में मनुष्यजाति ने जो विद्या लाभ की है उस विद्याका नाम 'रसायनविद्या' है। इस यत्न से सोना तो अभीतक नहीं बना पर इस यत्न के

रास्ते में जिस रसायनविद्या की प्राप्ति हुई उससे मनुष्य जातिका सोनासे भी अधिक उपकार हुआ।

जसे सोना बनाने के यत्न ने रसायन शास्त्र की उत्पत्ति की उसी तरह से मृत्यु को जीतनेके प्रयत्न ने धर्म, सम्प्रदाय, मज़हब और दर्शन शास्त्र को उत्पन्न किया। धर्मोपदेश कों ने देखा कि जब मृत्यु यहां पर दूर नहीं होती तो कहने लगे कि अमुक २ कार्य्यसे मनुष्य परलोकमें जाकर अमर होजायगा। अमर होनेकी इच्छा सबको थी। देखा इस लोकमें यदि अमर नहीं होते हैं तो जो धर्म और मज़हब कमसे कम परलोकमें भी हमें अमर बनानेका वचन देता है वही ग़नीमत है। तमाम मज़हबों और धार्मिक ग्रंन्थों में इसीकानाम मुक्ति या मोक्ष रक्खा गया और यूरोपीय ईसाईयोंने इसीको एटर्नललाइफ या सैलवेशन कहा। मतलब यह था कि मुक्ति की इस अवस्था में पहुँचकर मनुष्य अमर हो जाता है या जन्ममरण के बन्धन से मुक्त होजाता है। संसार की सारी जनता किसी दूसरे साधन में अमृतत्व की प्राप्ति न देखकर विवश हो पादड़ियों मुल्लाओं और धर्मोपदेश कों के इसी वचन से संतोष किया।

बहुतही प्राचीन कालकेलोग तो साफ २ मृत्युको जीतनेको ही मक्ति मानते थे। इसी से प्राचीन पुस्तकों में साफ २ ज्ञान द्वारा मृत्युको जीत लेनाही मोक्ष माना है। यद्यपि इस समय लोग मुक्तिके वास्तविक अर्थसे दूर जा पड़े हैं पर प्राचीन काल में मृत्युके पाश या बन्धन से छूट जाना ही मुक्ति और मोक्ष का

सच्चा रुप माना गया था। यही कारण है कि तमाम धर्म-ग्रंथों में मुक्ति के लिए जो २ शब्द आए हैं उनकाअर्थ बन्धनसे छूट जाना है। Salvation और नजात का अर्थ भी यही है। मनुष्य को सबसे अधिक डर मृत्युसे है अतः सबसे बड़ा बन्धन भी यही है। नीचे कुछ मंत्र वेंदों के उपनिषद् भागसे उद्धृत किए जाते हैं। इन्हें देखने से साफ मालूम हो जायगा कि प्राचीन कालके लोग मृत्यु को जीतने के लिए कितने प्रयत्नशील थे और इसे कितना बड़ा पुरुषार्थ समझते थे।

धार्मिक जगत् का जो सबसे बड़ा साधन योग और ज्ञान था उसका अन्तिम फल यही माना गया था कि इससे मनुष्य मृत्यु को दूर कर देगा। पर नवीन ग्रंथों में नहीं बहुतही प्राचीन ग्रंथों में। देखिए यजुर्वेद के श्वेताश्वतरोपनिषत् में क्या लिखा है:—

सएव काले भुवनस्य गोता,
विश्वाधिपः सर्व भूतेषु गूढः।
यस्मिन् युक्ता ब्रह्मर्षयो देवताश्च,
तमेवं ज्ञात्वा मृत्युपाशांश्छिनत्ति॥
अ० ४ मं० १५ वां।

अर्थ—वही ईश्वर तीनों कालमें स्थित होकर इस संसार का रक्षक है। उसी के होने से यह संसार है। अतः सारे विश्वका वही मालिक है। यद्यपि यह गूढ और गुप्त विषय है पर सच्ची बात यह है कि सब प्राणियों और सारे संसार में

वही छिपा हुआ और व्यापक है। और, व्यापक होने से सब वही है; (कैसे? इसके लिए ज्ञानशक्ति प्रेस गोरखपुर का छपा हुआ वेदान्त-सिद्धान्त देखिए) सब उसी का रूप है। इस अद्भुत और विचित्र ज्ञानमय ईश्वर में सभी ब्रह्मर्षि और देवता लगे हुए हैं। अतः उसी ईश्वर को इस प्रकार से जानकर मनुष्य मृत्यु के बन्धन को काट डालता या मृत्यु की फांसी से छूट जाता है।

बात यह है कि जिस समय यह ज्ञान हो गया कि इस शरीर के रोम २ में और अणु २ में तथा सारे संसार में वही व्यापक है जो अजर, अमर, अविनाशी, नीरोग, निर्विकार, निरंजन और निरामय है तो फिर इसी शरीर में रोग कहां रहेगा, बुढ़ापा कहां रहेगी और मृत्यु कहां रह सकती है। इस शरीर के भीतर और बाहर जब वही अविनाशी व्यापक है तो इस अविनाशी ब्रह्म के निकट वा सामने मृत्यु कैसे रह सकती है। संसार में यदि ब्रह्म और ईश्वर का अस्तित्व है तो मृत्यु का तो अस्तित्वही नहीं होसकती और सचमुच नहीं है। मृत्यु तो मृत्यु है, वह स्वयम् मर चुकी; उसका अस्तित्वही नहीं है। उसका अस्तित्व अज्ञानियों के हृदय में है और वही मरते हैं। जल जब आग पर चढाया जाता है तो गर्मी पाकर भाप बन कर उड़ जाता है; वास्तव में एक बिन्दु भर भी जलका नाश नहीं होता। इसी तरह मनुष्य का सूक्ष्म शरीर ज्वरादि की गर्मी पाकर स्थूल से अलग होकर सूक्ष्म लोक में उड़ जाता है

नाश नहीं होता। नाश किसी का नहीं होता। ईश्वर स्वयम् अविनाशी है और उसके बनाए हुए सभी अविनाशी हैं। संसार के किसी तत्व की मृत्यु नहीं होती। रूपान्तर होता है। रूपान्तर भी मनुष्य की ही कल्पना से होता है। मनुष्य अपना सच्चा स्वरूप न जान कर मृत्यु को अपने से प्रबल मानकर भयवश रूपान्तर को प्राप्त होता और इसी को मृत्यु कहता हैं। वास्तव में मनुष्य वही अविनाशी ईश्वर है और इसके ऊपर मृत्यु का अधिकार कभी नहीं हो सकता। मनुष्य को यदि अपने रूपका सच्चा ज्ञान हो जाय तो वह स्वयम् ईश्वर हो जायगा (जो वास्तव में पहले भी रहा) और फिर यदि वह चाहे तो यह मृत्यु भी न होगी जिसका दूसरा नाम रूपान्तर है। अज्ञान से मनुष्य अपने को मृत्यु के वश में समझता है। पर यह बात नहीं है। मृत्यु स्वयम् मनुष्य के वश में है और यह तब तक नहीं आ सकती जबतक मनुष्य स्वयम् इसे निमन्त्रण न दे। यदि ईश्वर मनुष्य से अलग भी मान लिया जाय तो दयालु ईश्वर कभी किसी के पास मृत्यु को नहीं भेज सकता। मृत्यु से डरने का स्वभाव पड़ गया है और मनुष्य अपने अज्ञान से इसे अपने से प्रबल मानता हुआ स्वयम् बुला लेता है। मनुष्य जानता है कि मरना सबके लिए अवश्यम्भावी है यही अज्ञान और विश्वास मनुष्य को मारता है। अतः सच्चा ज्ञान अवश्य मनुष्य को मृत्यु से छुड़ा सकता है। फिर इसी यजुर्वेद के श्वेताश्वतरोपनिषद् में कहा है:—

एष देवो विश्वकर्मा महात्मा,
सदाजनानां हृदये सन्निविष्टः ।
हृदामनीषा मनसाऽभिक्लृप्तो,
य एत द्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥
अ० ४ मंत्र १७ वां ।

अर्थ—इस विश्वको बनाने वाला यह परमात्मदेव ईश्वर सब मनुष्य के हृदय में विद्यमान है और ब्रह्मज्ञान, तीक्ष्ण बुद्धि तथा शुद्धमन से जाना जाता तथा प्रत्यक्ष होता है। अतः जो लोग इस अपने हृदयस्थ देव अर्थात् ईश्वर को इस तरह अपने से अभिन्न अपने में वा अपने हृदय में देखते हैं वह अमर हो जाते हैं। (बहुत साफ कहा है कि "ते (वे) अमृताः (अमर) भवन्ति (हो जाते हैं)। किस तरह से मनुष्य ज्ञान द्वारा अपने को ईश्वर जानकर अपने भीतर ईश्वर को प्रत्यक्ष करके अमर हो जाता है इसकी व्याख्या विस्तार के साथ इस मंत्रके ऊपर इसी उपनिषद् के १५ वें मंत्रको व्याख्या के साथ हो चुकी है और हमारे पाठक अभी पढ चुके हैं। इस लिए फिर वही बात इस मंत्र के साथ दुहराने की आवश्यकता नहीं है।

इसी यजुर्वेद के श्वेताश्वतरोपनिषद् में फिर देखिए:—

एको हंसो भुवनस्यायस्य मध्ये,
सएवाग्निः सलिले सन्निविष्टः।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति,

नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥
अध्याय ६ मन्त्र १५वां।

अर्थ—इस सारे संसार के मध्य में एक ही हंस रूप आत्मा सबका प्रकाशक अग्नि रूप होकर वर्त्तमान है। अतः परमात्मा ही जीव रूप होकर संसार में प्रवेश कर गया है। ऐसा जान कर मनुष्य (अपने को ब्रह्म समझता हुआ) मृत्यु को दूर कर देता है; इस के सिवा मृत्युको दूर करनेका कोई दूसरा रास्ता नहीं है। हमने भी इस पुस्तक में आरम्भ से लेकर अन्ततक इस मृत्यु को दूर करने के लिए किसी दूसरे रास्ते का ग्रहण नहीं किया है। इस बीसवीं सदी में साइन्स और मनोविज्ञान ने इतना उन्नति कर लिया है कि अब लाखों रोगीमनुष्य बिना किसी औषधिके केवल इच्छाशक्ति, मनोबल, आत्मबल और विश्वास द्वारा असाध्यसे असाध्य रोगको दूरकर रहे हैं। हमारा इस में यही कहना है कि यदि हम मनोबल, आत्मबल, इच्छा शक्ति, और विश्वास द्वारा रोगों को दूर कर सकते हैं तो बुढ़ापा और मृत्यु को भी दूर कर सकते हैं। हमने इन लेखों और पुस्तक में, इसे वैज्ञानिक प्रमाणों और प्रबल युक्तियों से सिद्ध कर दिया है। जैसा कि इस मंत्र में कहा गया है हम मानते हैं कि सिवा आत्मबल और मनोबल के किसी औषधिमें यह गुण नहीं है कि वह वृद्धावस्था दूर करके मनुष्य को सर्वथा नीरोग करते हुए उसके शरीर को भी अमर बना दे। पर इस ध्यानमें, आत्मबल, इच्छाशक्ति और मनोबल में, अवश्य वह शक्ति है जो मनुष्य के शरीर को बुढ़ापा,

ज्ञात्वा देवं सर्व्वपाशापहानिः,
क्षीणैः क्लेशैर्जन्म मृत्युप्रहाणिः॥
अध्याय १ मंत्र ११

अर्थ-उस परमात्मा को जब मनुष्य सचमुच जान लेता है तो सब प्रकार के बन्धनों से छूट जाता है और सब बन्धनों से छूटकर जब मनुष्य जीवन मुक्त हो जाता तो जन्म मृत्यु के क्लेश से भी छूट जाता है। एक बात यह ध्यान देने योग्य है कि जब तक मनुष्य मरण से नहीं छूटता तब तक जन्म से भी छूटने का भरोसा नहीं है। परन्तु जो मरेगा ही नहीं उसका जन्म कैसे हो सकता है। अतः जन्म मरणके बन्धन से छूटने के लिए अमर होना आवश्यक है।

इन सब मंत्रों में जो मृत्यु शब्द आया है उसका कोई दूसरा अर्थ नहीं है। यजुर्वेद के इसी श्वेताश्वतरोपनिषद् का पहला अध्याय निकाल कर १२ वां मंत्र देखिए। साफ़ कह दिया है:—

"नतस्य रोगो नजरा न मृत्युः,
प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्"

अर्थ-जिसका शरीर योगाग्नि से व्याप्त है उसे न रोग होगा न वह वृद्ध होगा और न उसकी मृत्यु होगी। कितना साफ़ है। क्या यहां पर मृत्यु का कोई दूसरा अर्थ है? कदापि नहीं। "योगसाधन" पर हमने एक स्वतन्त्र ग्रंथ अलग ही लिखकर तैयार किया है। इसमें हमने योग द्वारा शरीरको

निर्बलता, रोग और कुरूपता से बचाकर अमर बना दे। मनुष्य स्वरूप से अविनाशी और अमर होता हुआ भी इस वास्तविक ज्ञान को न जानकर मृत्यु से डरता है और मृत्यु को दूर करना असम्भव समझकर अपने इस विश्वास के अनुसार बराबर मरता जा रहा है। विश्वास करो और सच्चे ज्ञान को हृदय में लाकर नित्य उठकर कहो कि हम अमर हैं, अविनाशी हैं और नीरोग हैं। अपने को अविनाशी और ईश्वर मानकर शरीर को आज्ञा दीजिए और समझा दीजिए कि देखो तुम्हारे अंगर और अणुर में वही निरामय निर्विकार अविनाशी, अजर और अमर परमात्मा व्यापक है अतः तुम कभी मर नहीं सकते निर्भय रहो। जो कहो उसको विश्वास के साथ कहो। विश्वास दृढ करने के लिए इस पुस्तक को और हमारे बनाए हुए "वेदान्त-सिद्धान्तको बारम्बार पढिए। इसके उपायों को पढकर विश्वास के साथ काम में लाओ। इसका शरीर पर बहुत ही अद्भुत प्रभाव पड़ेगा। अथर्ववेद के कैवल्योपनिषद् को देखिये—

स एव सर्वं यद्भूतंयच्चभाव्यं सनातनम् ।
ज्ञात्वा तं मृत्यु मत्येति नान्यः पन्था विमुक्तये ॥

अर्थ—वही अनादि परमात्मा यह सब कुछ है। जो होने वाला वह भी वही है और जो कुछ हो चुका है वह भी। इसी को जानकर मनुष्य मृत्युसे छूट सकता है; मुक्ति पानेका कोई दूसरा उपाय नहीं है। इस मंत्रमें साफ २ मृत्युको दूर करनेको ही मुक्ति मानी है। यजुर्वेद के श्वेताश्वतरोपनिषद् में और देखिए:—

निर्बलता, रोग और कुरूपता से बचाकर अमर बना दे। मनुष्य स्वरूप से अविनाशी और अमर होता हुआ भी इस वास्तविक ज्ञान को न जानकर मृत्यु से डरता है और मृत्यु को दूर करना असम्भव समझकर अपने इस विश्वास के अनुसार बराबर मरता जा रहा है। विश्वास करो और सच्चे ज्ञान को हृदय में लाकर नित्य उठकर कहो कि हम अमर हैं, अविनाशी हैं और नीरोग हैं। अपने को अविनाशी और ईश्वर मानकर शरीर को आज्ञा दीजिए और समझा दीजिए कि देखो तुमारे अंगर और अणुर में वही निरामय निर्विकार अविनाशी, अजर और अमर परमात्मा व्यापक है अतः तुम कभी मर नहीं सकते निर्भय रहो। जो कहो उसको विश्वास के साथ कहो। विश्वास दृढ करने के लिए इस पुस्तक को और हमारे बनाए हुए "वेदान्त-सिद्धान्तको वारम्वार पढिए। इसके उपायों को पढकर विश्वास के साथ काम में लाओ। इसका शरीर पर बहुत ही अद्भुत प्रभाव पड़ेगा। अथर्ववेद के कैवल्योपनिषद् को देखिये—

स एव सर्वं यद्भूतंयच्चभाव्यं सनातनम्।
ज्ञात्वा तं मृत्यु मत्येति नान्यः पन्था विमुक्तये॥

अर्थ—वही अनादि परमात्मा यह सब कुछ है। जो होने वाला वह भी वही है और जो कुछ हो चुका है वह भी। इसी को जानकर मनुष्य मृत्युसे छुट सकता है; मुक्ति पानेका कोई दूसरा उपाय नहीं है। इस मंत्रमें साफ २ मृत्युको दूर करनेको ही मुक्ति मानी है। यजुर्वेद के श्वेताश्वतरोपनिषद् में और देखिए:—

ज्ञात्वा देवं सर्व्वपाशापहानिः,
क्षीणैः क्लेशैर्जन्म मृत्युप्रहाणिः॥
अध्याय १ मंत्र ११

अर्थ-उस परमात्मा को जब मनुष्य सचमुच जान लेता है तो सब प्रकार के बन्धनों से छूट जाता है और सब बन्धनों से छूटकर जब मनुष्य जीवन मुक्त हो जाता तो जन्म मृत्यु के क्लेश से भी छूट जाता है। एक बात यह ध्यान देने योग्य है कि जब तक मनुष्य मरण से नहीं छूटता तब तक जन्म से भी छूटने का भरोसा नहीं है। परन्तु जो मरेगा ही नहीं उसका जन्म कैसे हो सकता है। अतः जन्म मरणके बन्धन से छूटने के लिए अमर होना आवश्यक है।

इन सब मंत्रों में जो मृत्यु शब्द आया है उसका कोई दूसरा अर्थ नहीं है। यजुर्वेद के इसी श्वेताश्वतरोपनिषद् का पहला अध्याय निकाल कर १२ वां मंत्र देखिए। साफ़ कह दिया है:—

"नतस्य रोगो नजरा न मृत्युः,
प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्"

अर्थ-जिसका शरीर योगाग्नि से व्याप्त है उसे न रोग होगा न वह वृद्ध होगा और न उसकी मृत्यु होगी। कितना साफ़ है। क्या यहां पर मृत्यु का कोई दूसरा अर्थ है? कदापि नहीं। "योगसाधन" पर हमने एक स्वतन्त्र ग्रंथ अलग ही लिखकर तैयार किया है। इसमें हमने योग द्वारा शरीर को

सर्वदा युवा, नीरोग, रूपवान बलवान और अजर-अमर बनाए रखने का उपाय लिखा है। यह पुस्तक भी ज्ञानशक्ति प्रेस, गोरखपुर से मिल सकती है।

वेद और उपनिषद् ऐसे मंत्रों और वाक्यों से भरे पड़े हुए हैं। उस समय के भक्तों ने परमात्मा से जगह जगह पर प्रार्थना भी की है कि हमें मृत्यु से बचाओ। हमारे आयुर्वेद की उत्पत्ति भी वास्तव में मृत्यु से ही बचने के यत्न में हुई है। सब धर्मों में कुछ ऐसे लोग हैं जो अमर माने जाते हैं। धार्मिक ग्रंथोंमें मोक्ष शब्द मृत्यु से ही बचने के लिए आया था। ऋषि मुनि सभी यहां तक कि प्रत्येक मजहब और सम्प्रदाय के चलाने वालों ने इस मृत्यु को जीतने के लिए यत्न किया था और मनुष्य जातिका सब से बड़ा शत्रु इसीको मानते थे। यत्न करने पर भी जब मृत्युको जीतनेका उपाय लोगों को नहीं मिला तो विवश होकर लोगों ने मुक्ति का अर्थ ही बदल दिया और अदृश्य परलोकके अनंत सुखों की भावना करके किसी तरह मन को संतोष देने लगे। अब भी यदि मृत्युको जीतने का कोई उपाय मालूम हो जाय तो सारा संसार उसे अपनाने के लिए तैयार है। एक कठिनता अवश्य है कि लोगों को यह बात असम्भव मालूम होती है और पहले से ही इसे असंभव समझ कर ऐसे लेखों को पढ़नाही व्यर्थ समझते हैं। इसकी क्या दवा हो सकती है। पढ़िए; इस लेखको पढ़ने से कुछ न कुछ लाभ ही होगा हानि नहीं। हम इस बातको

केवल इसी लिए नहीं मानते हैं कि वेदों में लिखा है और पुराने लोग भी कहते हैं। जो बात सत्य है उसे चाहे पुराने लोग मानें वा न मानें; वेद कहे वा न कहे वह सत्य है। इस विषय में हमारे पास अनेक प्रमाण हैं कुछ यहां पर इस अध्यायमें कह दिया है और कुछ आगे कहेंगे। हमने पूर्ण रूपसे विश्वास दिलाने और साबित करने का यत्न किया है। क्यों कि विना प्रमाण के इसपर विश्वास नहीं होगा और विना विश्वास के संसार में कोई कार्य्य सफल नहीं हो सकता।

मृत्यु, वृद्धावस्था और रोगको केवल मनोबल दूर कर सकता है।

संसार में सबसे बड़ी वस्तु मन है। बड़े से बड़े फिलासफर, बड़ेसे बड़े वैज्ञानिक और बड़ेसे बड़े विद्वान् अन्तमें यही जान सके हैं कि संसार में सबसे बड़ा पदार्थ मन है। हिन्दू फिलासफी में इस बड़ी वस्तु का नाम "आत्मा" है। पर आत्मा और मन में कोई भेद नहीं है। आत्मा से मन है और मन के रहने से आत्मा है। जहां मन है वहीं चेतनता है और जहां चेतनता है वहीं मन है। आत्मा चेतन है अतः यह मनोमय है। मन, चेतनता, जीवन और आत्मा सब एक तत्व के अनेक नाम हैं।

बड़े से बड़े किले और महल, बड़े से बड़े यन्त्र और इञ्जिन और बड़े से बड़े अनुभव और विज्ञान के ग्रंथ किसने बनाए? मन ने, बुद्धि ने, आत्मा ने, वा जीवधारियों ने। बनने पर भी क्या कोई यन्त्र बिना किसी जीवधारी के चलाए, बिना मन वा बुद्धि के, चल सकता है? कभी नहीं। बड़ी से बड़ी वस्तु जिससे संसार में आश्चर्य्य जनक काम हो रहा है उसे विचार करके देखिए तो मालूम होगा कि यह सब जीवधारियों के मन के अद्भुत कार्य्य हैं।

मन ने जब देखने की इच्छा की तो आंख और रूप की उत्पत्ति हुई। रूप बिना प्रकाश के प्रत्यक्ष नहीं होता अतः

रूप और आंखके साथ प्रकाश की भी उत्पत्ति हुई। अग्नि, गर्मी और प्रकाश का राजा सूर्य्य है अतः साथही सूर्य्य की भी उत्पत्ति हुई। तात्पर्य्य यह है कि मन को देखने वाली इच्छा से आंख, रूप और सूर्य्य तीनों की उत्पत्ति हुई।

निराकार ज्ञान का साकार रूप प्रकाश है। ज्ञान से आंख खुलजाती और अन्धकार दूर हो जाता है। ज्ञान से प्रकाश होता है और अज्ञान से अन्धकार। अन्धकार और अज्ञान से मनुष्य ठोकर खाता है और प्रकाश या ज्ञान के आजाने से बच जाता है। आत्मा और मन दोनों ज्ञानमय हैं अतः दोनों प्रकाश मान् तत्व हैं। इसी परमप्रकाशमान् तत्व से अर्थात् मन वा आत्मा से सूर्य्य की उत्पत्ति हुई है। सूर्य्य आत्मा काही दूसरा रूप है। आत्माही सूर्य्य रूपसे सामने चमक रहा है। आश्चर्य्य करनेकीबात नहीं सत्य है। यह जाज्वल्यमान् और अद्भुत प्रकाश आत्मा काही एक साकार रूप है।

यह पृथ्वी गोल है। पृथ्वीही नहीं सारा संसार गोल है। यहां इस पृथ्वी पर किसी स्थान से चलकर यदि एकही दिशा की ओर बराबर चले जायँ तो फिर उसी स्थान पर आजायँगे जहांसे कि रवाना हुए थे। मतलब यह है कि यदि किसी तरह से हम दूर तक देख सकें तो सामने देखते हुए भी बहुत ही दूर पर अपना ही रूप देख सकेंगे; क्यों कि पृथ्वी गोल है। जैसे मनुष्य सामने ही चलता हुआ फिर उसी जगह पहुँच जायगा जहां से कि रवाना हुआ था; उसी तरह से यह दृष्टि सामने से आगे बढ़ती हुई उसी जगह पहुँच जायगी जहां से

कि रवाना हुई थी। अनुमान कीजिए कि हमारी दृष्टि बहुत ही बड़ी है तो इसके अनुसार बहुत ही दूर पर सामने फिर हम अपने को ही देख सकेंगे हमें अपना ही रूप दृष्टिगोचर होगा।

इस भूमिका से हम कहना यह चाहते हैं कि भीतर का आत्मा ही ऊपर बहुत दूर पर सूर्य्यरूप से चमक रहा है। यह सूर्य नहीं आत्मा है जो बहुत दूर पर संसार के गोल होने के कारण सामने दृष्टिगोचर होरहा है। इसी तरह से नाक, कान, जिह्वा और त्वचा, गन्ध, रस, स्पर्श और शब्द अथवा यह सारा संसार इसी मन की कल्पना है। इसी मन से सारे संसार की उत्पत्ति हुई और सारा संसार इसी मन के अधीन है। अतः सारे संसार में मन से वा आत्मा से बड़ी चीज़ कोई नहीं है।

सारे संसार का बनाने वाला मन है अतः सारे संसार को मनही एक ऐसा तत्व है जो अपने इशारे पर नचा सकता है। शरीर पर तो केवल आत्मा काही प्रभाव है। एक, दो दिन में हो या दो वर्ष में हो पर मन का प्रभाव शरीर पर बिना पड़े नहीं रहता।

रोग, मृत्यु और वृद्धावस्था का कारण केवल अज्ञान है। ज्ञान होते ही मन की अवस्था बदल जायगी और मृत्यु, वृद्धावस्था एवम् रोग दूर होजायंगे। वह कौनसा अज्ञान है जिससे यह तीनों प्रत्यक्ष होरहे हैं। वह अज्ञान है वास्तविक

तत्व का; सच्ची वार्ता का। वह सच्चा तत्व क्या है? सच्ची बात यह है कि यह सारा संसार उस आत्मा से उत्पन्न हुआ है जो नीरोग, निरामय, निर्विकार और अव्यय है। अतः सच्ची बात यह है कि निर्विकारसे उत्पन्न हुआ सारा संसार भी निर्विकार और निरामय है। वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु आदि विकार इस वास्तविक तत्व के अज्ञान के कारण हैं।

जब सारे संसार में आत्मा और परमात्मा व्यापक हो रहे हैं तो इसी स्थान में वृद्धावस्था, मृत्यु और रोग कैसे रह सकते हैं।

इस वास्तविक तत्व के अज्ञान के कारण मनुष्य स्वयम् असंख्य वर्षों से मृत्यु, वृद्धावस्था और रोग की कल्पना कर के वृद्धहोता, रोगी होता और मरता है। स्वयम् कहता है कि इतने दिनों के बाद वृद्ध होजायँगे, यह काम करेंगे तो रोगी होजायंगे और मरना तो अवश्यम्भावी है। बस, इसी अपनी कल्पना के अनुसार मनुष्य वृद्ध होता, रोगी होता और मरता है। जब मनुष्य स्वयम् कहता है कि मृत्यु और बुढापा को कोई टालनहीं सकता तो मृत्यु और बुढापा का आना भी अनिवार्य्य होजाता है। मृत्यु स्वयम् भी मृतक और जीवन हीन है। जीवन के अभाव काही नाम मृत्यु है। जहां जीवन काही अभाव है उस में शक्ति कहां? जिसमें शक्ति, बल और जीवन नहीं है; जोस्वयम् मृतक और मृत्यु है; जो कोई व्यक्ति, जीव, पदार्थ, और वस्तु नहीं है; जो केवल

अज्ञानावस्था की एक कल्पना है उसे दूर करने के लिए अधिक यत्न, सामग्री वा सामान की आवश्यकता नहीं। जिस तहर से यह केवल मन की कल्पना मात्र से है उसी तरह केवल कल्पना से दूर भी होसकती है।

मृत्यु, रोग और वृद्धावस्था केवल अज्ञान की कल्पना है अतः ज्ञानकी कल्पना से इनका नाश हो जायगा। जो कोई वस्तु नहीं केवल अज्ञान में ही उसका भाव है उसका वास्तविक ज्ञान होने पर यदि अभाव होजाय तो कोई आश्चर्य्य नहीं। हमने इसीलेख में ऊपर सिद्ध किया है, कि संसार में मन सबसे बड़ी चीज है, सबसे बड़ा पदार्थ और सबसे बड़ी शक्ति है। अतः वृद्धावस्था और मृत्यु यदि दूर हो सकती है तो इसी मन के प्रभाव से दूसरा कोई उपाय न है; न था न आगे होगा। औषधियों में जो शक्ति है वह इसी मनकी शक्तिका एक प्रतिबिम्ब है। बहुत दिनों से मनुष्य कल्पना करता आरहा है कि इस औषधि में यह गुण है। औषधि प्रार्थना अथवा पूजा बिना विश्वास के लाभ नहीं पहुँचाती औषधि में ही नहीं सारे संसार में मन का साम्राज्य है। मन ही सब से बड़ा तत्व है और यही मृत्यु तथा रोगों को समूल नष्ट कर सकता है और वृद्धावस्था को दूर कर सकता है। मनुष्य का ईश्वर भी उतनाही बड़ा है जितना बड़ा उसका विचार, ज्ञान और मन है। मनुष्य के मनमें जितना बड़ा और उच्च ज्ञान होता है उतने ही बड़े और उच्च ईश्वर की भी कल्पना कर सकता

है। जहां तक जिस मनुष्य के मनकी कल्पना पहुँचती है उतने ही बड़े ईश्वर की वह मनुष्य कल्पना कर सकता है। यह ईश्वर भी उतना ही फल दे सकता है जितना मनुष्य के भीतर विश्वास होता है। अपने मन का विश्वास ही अपना मनही, ईश्वर है। मनुष्य के वन्ध मोक्षका कारण केवल उसका मन है। मन सब से बड़ा महान् और एक अद्भुत पदार्थ है।

जिस मनुष्य का मन इस वास्तविक तत्व से अनभिज्ञ है कि, "यहां कहीं बुढ़ापा, रोग और मृत्यु नहीं है किन्तु एक आत्मा या परमात्मा ही सर्वव्यापक है", वही मरता है, रोगी होता है और वृद्ध होता है। सारे संसार में एक ही तत्व है और वही सर्व व्यापक है। इस तत्व का नाम मन, आत्म या परमात्मा है। आत्मा और मन दोनों अविनाशी हैं। सारे संसारमें यही अविनाशी व्याप्त हो रहा है। इसी शरीरके अणु२ में यदि यहीं अविनाशी, निर्विकार और निरामय आत्मा व्यापक है तो यहीं रोग, मृत्यु और वृद्धावस्था कैसे रह सकती है? फिर भी मनुष्य कहता है और स्वयम् कहता है कि मरना जरूरी है और वृद्ध होना अनिवार्य्य है। जब वह स्वयम् कहता है तो फिर क्यों न मरे और वृद्ध हो।

"शरीर से अमर होने का उपाय" नामकी पुस्तक को हमारा एक मनुष्य बेंच रहा था। उस पुस्तक में उस वक्त यह लेख सम्मिलित नहीं था। एक मनुष्य हमारे इस आदमी से लड़गया और कहने लगा कि मरना जरूरी है, हम

अवश्य मरेंगे, कोई नहीं बच सकता; इस पुस्तक को फूंक दो।" मरने वृद्ध होने और रोगी होने की ऐसी दृढ भावना और ऐसा दृढ विश्वास है तो सचमुच अमर होना कठिन है। पर साथही अपने २ जीवन में सबने विश्वास और मनका प्रभाव शरीर पर पड़ते हुए देखा है। यदि इसका प्रभाव पड़ता है और मन तथा विश्वास में अद्भुत बल है तो हम इससे एक अच्छा काम क्यों न लें। "हम नीरोग हैं, युवा हैं, सुन्दर हैं, बलवान हैं, बुद्धिमान् हैं, ज्ञानवान्, भाग्यमान् और अमर हैं, यदि इस भावना को हम नित्य उठकर विश्वास के साथ करें तो इसमें सिवा लाभ के हानि नहीं है। विश्वास में यदि कमी हुई तब भी १०० सौ में ८० रोग छूट जायंगे। यदि ३० वर्ष में वृद्ध होने वाले थे तो अब ६० वर्ष तक वृद्ध न होंगे। अमर न हुए यदि थोड़ी सी भी आयु बढ गई तो सिवा लाभ के कोई हानि नहीं है।

प्रातःकाल उठो और कमसे कम अपने शरीर भर का अपने को राजा समझ कर चित्त को एकाग्र करके शरीर को सामने तलब कर के, शरीर को पुकार कर कहो कि देखो तुमारे अणु अणुमें वह आत्मा व्यापक है जो अनादि, अनन्त, निरामय, निर्विकार अजर और अमर है। अतः तुम्हें भी रोगी नहीं होना चाहिए, वृद्ध नहीं होना चाहिए और इसीतरह मरना भी नहीं चाहिए। देखो तुम हमारे (परमात्माके) शरीर हो तुमारे भीतर हम (परमात्मा) रहते हैं अतः तुम नीरोग, सुन्दर, सुडौल,

युवा, बलवान, अजर और अमर बने रहो। इन बातोंकी आज्ञा ठीक उसी तरह से अपने शरीरको दीजिए जैसे सम्राट् अपनी प्रजा को देता है। धैर्य्य और विश्वास के साथ इसका नित्य साधन कीजिए थोड़े ही दिनों में शरीर के ऊपर इसका अद्भुत प्रभाव पड़ेगा। और जब आप इसका अद्भुत प्रभाव स्वयम् देखेंगे तो विश्वास भी बढता जायगा और विश्वास बढनेके साथ ही साथ लाभ भी अधिक होगा।

विश्वास और ज्ञानका बहुत बड़ा सम्बन्ध है। बिना ज्ञान के विश्वास नहीं होता। यह इतना बड़ा जो लेखलिखा गया है केवल इसीलिए कि आप मनोबल के महत्व को समझें और आपका अपने मन पर दृढ़ विश्वास हो। वास्तविक तत्व के ज्ञानसे अज्ञान दूर होजाता है और अज्ञान के दूर हो जानेसे मनुष्य सत्य पर दृढ़ता के साथ खड़ा हो सकता है।

सचमुच सोचिए तो सही मृत्युभी कोई व्यक्ति है, कोई जीवधारी है, कोई प्राणी है, अथवा कोई वस्तु है? कुछ नहीं। जहां जीवन, बल और शक्ति नहीं है—जहां इनका अभाव है-उसीका नाम मृत्यु है। मृत्यु स्वयम् एक मरी हुई वस्तु है-एक ऐसी वस्तु है जिसका भावही संसार में नहीं है। संसार में कोई मरता ही नहीं। संसारके एक अणुका भी नाश नहीं होता। फिर जिसका कहीं अस्तित्वही नहीं है, जिसका व्यक्तित्वही नहीं है, उससे डरना, उसे प्रबल मानना और उसको जीतना असम्भव समझना कहां का ज्ञान है। जैसे भूतका अस्तित्व

नहीं है पर उससे डर २ कर अबतक असंख्य मनुष्य मर चुके हैं उसी तरह से यद्यपि इस मृत्यु का अस्तित्व नहीं है पर इसके अस्तित्व की भावना से इसके प्रबल रूपकी कल्पना से और इसके भयसे लोग मरते चले जाते हैं।

बहुत से विद्वान् देखते हैं कि वृद्धों की प्रतिष्ठा अधिक होती है। अतः वे छोटी उमर में भी अधिक प्रतिष्ठा कराने के लिए गंभीर बनते, मुंह फुलाकर बैठते, हँसना बोलना कम कर देते और वृद्ध होने की हृदय से इच्छा करते हैं। ऐसे लोग शीघ्र वही हो जाते हैं जो चाहते हैं। लड़कपन के भाव, युवावस्था के उत्साह और शरीर की तेज़ी इनमें से निकल जाती है। चश्मा लगाने की इच्छा सचमुच आंख की रोशनी को कम कर देती है। जैसा यह चाहते हैं हो जाता है। इनके शरीर की चपलता को वृद्धावस्था की गम्भीरता दबा देती है। युवावस्था के उत्साह को प्रतिष्ठा की भूख नष्टकर डालती है। खेल-कूद-हंसी-दिल्लगी और उत्साह सब नष्ट हो जाते हैं। बस ऐसे विद्वान् २५ ही वर्ष में चश्मा लगाए, मुंह पिचकाए, चंचलता छोड़ कर महात्मा बने हुए बैठे रहते हैं। महात्मा बनने के यत्न में यह अति शीघ्र वृद्ध हो जाते हैं। अतः इन बातों को छोड़िए, एक पक्षी की तरह प्रसन्न रहिए। ऊपर कहे हुए सच्चे ज्ञान से लाभ उठाइए। सारी दुर्बलता, सारारोग, वृद्धावस्था और मृत्यु सब दूर हो जायंगी।

इसका पूरा विवरण देखने और विचार से जानने के लिए हमारी बनाई हुई पुस्तकें " योग-साधन, " और " वेदान्त-

सिद्धान्त" आदि देखिए। हमारी बनाई हुई पुस्तकें „ज्ञानशक्ति प्रेस, गोरखपुर" से मिल सकती हैं।

शरीर को अमर बनाने का ज्ञान।

मनका स्थूल रूप शरीर है और शरीर का सार भाग मन है। जैसे दूध का सार भाग घी है उसी तरह से शरीर का सार मन है। शरीर के पहले मन था और मनके पहले शरीर। जैसे मन विना शरीर नहीं रह सकता उसी तरह शरीर से अलग मन कहीं आज तक देखा नहीं गया। मन और आत्मा दोनों एक हैं। आत्मा समुद्र है मन उसका तरंग है। आत्मा चेतन है और इसी चैतन्यता की शक्ति का नाम मन है। मन वहीं होता है जहां चेतनता रहती है। पर चेतनता भी विना मनके नहीं रह सकती।

मन, शरीर और संसार तीनों एक ही हैं। आत्मा परमात्मा और मन यह तीनों एक हैं। मन दोनों में है अतः परमात्मा और संसार को एक में जोड़ने वाला यही बीच का पदार्थ मन है। संकल्पों के समूह का नाम शरीर और संसार है तथा आत्मा वा जीव रूप चेतन समूहका नाम परमात्मा है। व्यष्टि आत्मा है समष्टि परमात्मा है। आत्मा का आधार वा स्थूलरूप शरीर है और परमात्मा का आधार वा स्थूलरूप अखिल विश्व संसार है। परमात्मा का स्वाभाविक गुण संसार बनाना है और मनोमयात्मा, जीव वा मन का गुण शरीर बनाना है। जबतक परमात्मा रहेंगे तबतक संसार रहेगा और जबतक मन रहेगा तबतक किसी न किसी रूप में

शरीर रहेगा। परमात्मा भी इसी तरह से बराबर थे, और रहेंगे। संसार भी इसी तरह पर पहले था, अब है और आगे रहेगा। परमात्मा भी अमर है, संसार भी अमर है और शरीर भी अमर है।

शरीर किसी का नहीं मरता; केवल रूपान्तर होता है। पानी के जल जाने पर भी उसका नाश नहीं होता केवल रूप से वाष्प रूप में हो जाता है। जल भाप बन जाता है मिटता नहीं। उसी तरह से शरीर स्थूल से सूक्ष्म हो जाता है; मरता नहीं। पानी भाप बनकर फिर पानी बन जाता है उसी तरह शरीर सूक्ष्म से फिर स्थूल हो जाता है। जल सरदी पाकर जम जाता और गरमी से भाप रूप हो जाता है। इस बात को यन्त्रों द्वारा परीक्षा करके हम प्रत्यक्ष देखते हैं। इसी को साइन्स या पदार्थ विज्ञान कहते हैं। आजकल के पदार्थ विज्ञान से यह प्रत्यक्ष देखा गया है कि संसार के एक २ अणु का भी कभी किसी दशा में नाश नहीं होता; केवल रूपान्तर होता है। जब किसी का नाश नहीं होता तो आत्मा, परमात्मा और शरीर का भी नाश नहीं होता यह सिद्ध है। आत्मा यदि अविनाशी है तो उसका मन भी अविनाशी है। और, यदि मन अमर है तो उसका आधार शरीर भी अमर है बिना शरीर के आज तक कहीं मन देखा नहीं गया। अतः यदि मरने के बाद मन या आत्मा रह जाती है तो अवश्य एक सूक्ष्म शरीर भी रहता होगा और, यदि कोई सूक्ष्म शरीर मरने के बाद भी रह जाता है तो यह सिद्ध है कि शरीर भी अमर है।

अतः संसार में सभी अमर हैं; संसार के किसी अणु का किसी तरहका नाश नहीं होता तो शरीर का नाश कैसे होगा। संसार भी अमर है, शरीर भी अमर है और आत्मा तथा परमात्मा दोनों अमर हैं। अविनाशी का रचा हुआ प्रत्येक तत्व अविनाशी है। रचा हुआ नहीं स्वयम् अविनाशी ने ही स्थूल रूप होकर संसार रूप धारण किया है। जैसे, सूक्ष्म भाप सरदी से जम कर पत्थर हो जाती है उसी तरह से सूक्ष्म आत्मा संसार और शरीर हो जाती है।

आत्मा मनोमय होता है और मन होता है संकल्पमय। मन कुछ न कुछ सोचा विचारा या संकल्प किया करता है। एकाग्र संकल्प स्थूल होकर स्वप्न रूप में परिवर्तित हो जाता और प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है। स्वप्न में रहने पर भी संकल्प में डूबा हुआ मन संकल्पों और विकल्पों के रूपको अति स्थूल रूपमें प्रत्यक्ष देखता है। जैसे संकल्प, स्वप्नमें नदी और पहाड़ बना लेता है उसी तरह से इस जाग्रदवस्था का नदी पहाड़ भी उसी संकल्प का बनाया हुआ है। स्वप्न व्यष्टिजीव या आत्मा का संकल्प है और संसार समष्टि या परमात्मा का संकल्प है। अतः आत्मा, परमात्मा, मन, संकल्प, शरीर और संसार सब एकही हैं और एकही तत्व से बने हुए हैं। इसी से वेदों में कहा है कि "एक मेवाद्वितीयम्" और "सर्वं खल्विदं ब्रह्म"। अर्थात् एकही तत्व है और सब कुछ ब्रह्म है।

यही कारण है कि शरीर पर केवल मन का प्रभाव है। यदि कोई तलवार से किसी के शरीर को काटता है तो यह भी

मनका ही प्रभाव है। मारने वाले ने मनसे ही संकल्प करके तलवार उठाया और मनसे यह जानता था। कि इससे मारने पर वह मर जायगा। तलवार बनाने वाला लोहार भी मनोमय था। उसने भी मनसे ही सोचकर ऐसी तलवार बनाई थी जो शरीर काट सके। लोगों का यह बहुत दिनों का विश्वास भी मनके भीतर ही था कि तलवार से शरीर कट जाता है। जिसे मारा गया उसने भी यह विश्वास किया कि यह तलवार लग रही है अब शरीर कट जायगा। कहां तक कहा जाय। बुद्धिमान् के लिए अधिक कहने की आवश्यकता नहीं सारे संसार में केवल मनका खेल है। यदि मन न होता तो संसार भी न होता। शरीर पर तो मन का पूरा प्रभाव है। अतः यदि मन चाहे तो यह रूपान्तर भी नहो। मृत्यु तो कोई वस्तु नहीं। संसारका प्रत्येक अणु अमर है। शरीर, आत्मा और मन सब अमर हैं केवल रूपान्तर होता है। यह रूपान्तर भी तभी तक होता है जब तक यह मन स्वयम् चाहता है। अतः शरीर का अमर होना तभी तक कठिन और असम्भव है जबतक यह मन स्वयम् इसे असम्भव मानता है। मनके विश्वास का सारे शरीर और सारे संसार पर प्रभाव पड़ सकता है। अतः यदि मृत्यु के विश्वास को मनसे हटादिया जाय तो वह केवल रूपान्तर रूप मृत्यु भी अवश्य हट जायगी। मृत्यु और रूपान्तर क्या, इस मन वा आत्मा से बढ़कर प्रबल संसार में कोई नहीं है। यदि आप नहीं चाहते तो विश्वास कीजिए आपके शरीर की मृत्यु या रूपान्तर कभी नहीं हो सकता। संसार की सार

बातें आपकी इच्छा पर हैं-यही सबसे बड़ा ज्ञान है जिसे मनुष्य जातिको जानना है। मनुष्य की इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं हो सकता। यदि मनुष्य आत्म बलका परिचय प्राप्तकर ले तो मनुष्यकी इच्छा भाग्यको बदल कर संसारको भी हिला सकती है। मनुष्य यदि अपने मनके इस बल को समझ कर इच्छा करे और दृढ विश्वास के साथ इच्छा करे तो अवश्य मृत्यु परभी विजय लाभ करले और सर्वदा नीरोग, सुन्दर, युवा और बलवान बनारहे। वास्तवमें मनुष्य कोई साधारण चीज़ नहीं है। इसलेख पर विचार किजिए तो आपको मालूम होगा कि यह मनुष्य, मनुष्य नहीं किन्तु सर्वशक्तिमान् ईश्वर है।

संसार में रोग दोष और पाप नहीं है; यदि है तो केवल असत्‌त्वहै।

हम इसे सिद्ध कर चुके हैं कि सारे संसार में एकही तत्व है। एक ही तत्व है जो ओतप्रोत रूप में इस विश्व ब्रह्मांड में सर्वव्यापक हो रहा है। इस एक तत्व का नाम आत्मा या ईश्वर है। यह तत्व चेतन और सजीव है। इसका वास्तविक रूप निराकार, निर्विकार, निरामय और अव्यय है। आमय कहते हैं रोग को; रोगसे रहित होने के कारण इसे निरामय कहते हैं। विकार भी रोगादि से ही होता है। जिसमें कभी किसी कालमें किसी तरह का विकार नहीं होता उसी को निर्विकार कहते हैं। ईश्वर या आत्मा को निर्विकार और निरामय सब मत के विद्वान्‌ मानते हैं। निराकार सच्चिदानन्द आत्मा जो केवल सजीव, सत्य और चेतन मात्र है उसमें विकार और रोग नहीं होसकते।

बस, यहीएक तत्व सब तरफ से इस संसारमें व्यापक हो रहा है। व्यापक क्या यही एक तत्व है जो अनेक रूप धारण करके प्रत्यक्ष हो रहा है। अतः जिस संसार और शरीर में चेतन आत्मा या ईश्वर व्यापक हो रहा है वहां रोग कैसे रह सकता है। जिस जगह पर निरामय और निर्विकार ईश्वर है वहीं रोग कैसे रह सकता है? संसार में जिसे रोग कहते हैं

यह रोग नहीं यह तो शरीरका धर्म और स्वास्थ्य तथा जीवन का लक्षण है। पर मनुष्य इस वास्तविक तत्वको न समझ कर शरीर के इस सामयिक परिवर्त्तन, रूपान्तर, धर्म और गतिको देखकर इसे रोग मानकर डर जाते हैं । यह डर रोग को भयंकर रूप देकर कभी २ मृत्यु का भी कारण बन जाता है। रोग को रोग न समझ कर यदि शरीर का धर्म और एक प्रकार का सामयिक परिवर्त्तन मान लिया जाय तो रोग से घबड़ाहट न होगी और रोग शीघ्र अच्छा हो जायगा। जैसे आप अपने मकान और आंगन को कभी २ धोने और मैले पानी को नाबदान के रास्ते निकाल देते हैं ठीक इसी तरह से प्रकृति (Nature) भी स्वाभाविक रूप में समय आने पर जब शरीर को साफ करना आरम्भ करती है और धोकर इसके विकारों को निकाल ने लगती है तो आप जानते हैं कि रोग हो गया है। पर, सच्ची बात यह है कि यह रोग नहीं किन्तु शरीर की सफाई या सजीव शरीर का एक प्राकृतिक धर्म है जो समय पड़ने पर होता रहता है।

समय आने पर वृक्षों के सब पत्ते सूख कर झड़ जाते हैं और वृक्ष ठूंठा होजाताहै। यदि वृक्ष मनुष्य होते और इनवृक्षों में भी डाक्टर और वैद्य होते तो पत्तों के सूखने और झड़ने पर वृक्ष यही समझते कि यह कोई भारी रोग है। पर थोड़े ही दिनों में जब उसमें हरे २ कोमल और सुन्दर पत्ते निकल आते हैं तो स्पष्ट मालूम होता है कि यह रोगनहीं किन्तु वृक्षके

सजीवता का एक लक्षण था और वृक्षों में अधिक सजीवता लाने तथा उसे अधिक सुन्दर बनाने के लिए प्रकृति(Nature) का एक उपाय था। मकान झाड़कर जब कूड़े कर्कट को इकट्ठा नौकर उसे बाहर फेंकना आरम्भ करता है तो इस मकान को कोई हानि नहीं होती किन्तु इससे मकान की सफाई हो जाती है। इन बातों को समझते हुए भी शरीर की सफाई को देख कर जो प्रकृति द्वारा समय २ पर हुआ करती है मनुष्य डर जाता और उसे एक रोग समझ लेता है। थोड़ा सा भी विचार कर लेने पर यह बात समझ में आजाती है। हम किसी रोग का अलग २ नाम लेना नहीं चाहते। जुकाम, ज्वर, अतीसार और फोड़ा फुन्सी आदि किसी भी रोग को लीजिए और विचार कीजिए तो मालूम होगा कि यह सब रोग नहीं किन्तु शरीर को साफ, सजीव और नवीन बनाने के लिए आते हैं और शरीर को साफ, सुन्दर और नवीन बनाकर चले जाते हैं।

जैसे प्रकृति वृक्षों में नवीन जीवन और नवीन पत्तों को लाने के लिए वृक्षों को ठूंठा कर देती है उसी तरह से मनुष्य शरीर में भी नवीन जीवन नवीन रस तथा शुद्ध रक्त लाने और जीवन हीन अणुओं को बाहर निकाल देने के लिए प्रकृति जो कार्य्य करने लगती है उसको अज्ञानवश बहुत से मनुष्य रोग कहते हैं।

निष्पाप पवित्र और निर्विकार ईश्वर या आत्मा के बनाए संसार में कहीं पाप, बुराई और दुःख नहीं है। जो कुछ बना

है वह मनुष्यों की भलाई के लिए है। निर्विकार और दयालु परमात्मा दुःख, विपत्ति, पाप और रोग को नहीं बना सकता; और जिसे उसने नहीं बनाया वह सचमुच नहीं बना है। अतः संसार यदि ईश्वर का बनाया हुआ है तो यहां पाप, रोग और क्लेशोंका अस्तित्व नहीं है। रोग, दोष और पापका अस्तित्व वास्तव में अज्ञान के साथ है।

अज्ञान स्वयम् पाप और रोग रूप है। ज्ञान रूप परमात्मा है। रोगों का अस्तित्व केवल अज्ञान में है। रोग, बुराई और क्लेश का अस्तित्व न होने पर भी मनुष्य अपने अज्ञान वश इनकी कल्पना कर और फिर अपने ही कल्पना से बनाए हुए इन रोगों से डरकर इन्हें भयंकर बना लेता है। पर इसके विरुद्ध वास्तविक ज्ञान होने से मनुष्य सब जगह और सर्व-गत परमात्मा को देखता हुआ निर्भय होकर क्लेशों और रोगों से मुक्त हो जाता है।

शीत और उष्ण तथा पूर्वोक्त प्रकार के रूपान्तरका प्रभाव सजीव पर ही होता है। पत्थर को गर्मी या सर्दी नहीं मालूम होती। इसी तरह से जिसे कभी रोग नहीं होता उसमें यह सिद्ध है की जीवनी शक्तिकी कमी है। यही कारण है कि जिसे कभी रोग नहीं होता वह शीघ्र मर जाता है। जिसके शरीर में जितनीही अधिक जीवनी शक्ति होती है उसमें प्रकृति कि ओर से सफाई का उतना ही अधिक अच्छा प्रबन्ध होता है और जिसके शरीर में सफाई का जितनाही अच्छा प्रबन्ध होता है अज्ञानवश लोग उसे उतनाही रोगी कहते हैं।

प्रकृतिकी सफाई वाले प्रबन्धको न समझकर, लोग इसे रोग समझ कर डर जाते और डर कर अपनेही कल्पना से उसे बढ़ालेते हैं। औषधियों से भी प्रायः इस सफाई में बाधा पड़ती है और सफाईका यहकार्य सचमुच रोग रूपमें परिवर्त्तन होजाता है। वैद्य भी धनोपार्जन के लिए प्रकृतिके इस कार्य से मनुष्यों को डरादेते और इस सफाई के कार्य को सचमुच एक बहुत बड़ा रोग बना देते हैं। अतः हमारी धारणा है कि यदि तमाम वैद्य, डाक्टर और हकीम संसार से निकाल दिए जायँ तो संसारसे आधे रोग उसीरोज कमहो जायं। रोगका अस्तित्व सचमुच नहीं है। रोग अज्ञान और भ्रमकी कल्पना के भीतर है। अतः यदि नीरोगहोना है तो मनुष्यको चाहिए कि इस वास्तविक ज्ञानको समझकर अपने मस्तिष्क से रोग की कल्पना को निकाल दे। रोग के अस्तित्व की कल्पनामनके भीतर है अतः नीरोग होने के लिए मस्तिष्क का नीरोग होना परमावश्यक है। मस्तिष्क से मतलब हमारा मन या दिमागसे है। दिमाग़ या मन उसीका नीरोग है जिसके भितर यह सच्चा ज्ञान है कि संसार में एकही तत्व है और वह तत्व निरामय निर्विकार और नीरोग है। इस सच्चे ज्ञान से मनुष्यके मास्तिष्क से रोग की भावना निकल जाती है और मनुष्य नीरोग अमर और जीवनमुक्त हो जाता है। इसी नीरोग, निरामय निर्विकार और अमर तत्व को जानकर मनुष्य अमर और कृतकृत्य हो जाता है यदि शरीर में कोई विकार या रोग दृष्टिगोचर हो तो उसी वक्त यह समझ लेना चाहिए कि यह वास्तव में

रोग और विकार नहीं है; यह प्रकृति की ओर से शरीर की सफाई का वह कार्य्य है जिससे शरीर शीघ्रही अधिक सजीव, शुद्ध, सुन्दर बलवान नवीन और स्वच्छ होजायगा। यह रोग नहीं है, केवल शरीर की भलाई के लिए आगया है और शरीर को सुन्दर, पवित्र तथा स्वच्छ करके शीघ्र चला जायगा। इस पूर्वोक्त भावना, विचार और सिद्धान्त से शरीर धीरे २ अत्यन्त पवित्र, स्वच्छ, सुन्दर, नीरोग, निर्विकार, सजीव, युवा, बलवान् और अमर हो जायगा। हमारे इन लेखों को बारम्बार पढ़िए और विचारिए। बार २ पढ़ने और विचारने से इस प्रकार की भावना, दृढ़ होती जायगी और इस प्रकार की भावना जितनी ही दृढ़ होगी उतनाही पाठकों और साधकों का उपकार होगा।

कमसे कम ईश्वर का अस्तित्व मानने वाले को इसकी कल्पनातक नहीं होनी चाहिए कि ईश्वर की बनाई हुई इस सृष्टि या संसार में कहीं बुराई, अपवित्रता, पाप या रोग दोष हैं। संसारमें जो कुछ हो रहा है सब मनुष्य जाति, जिव या संसारकी भलाई के लिए। प्रकृतिकेतमाम नियम जीवधारियों के उपकार, और लाभ के लिए बने हैं। दयालु, निर्विकार और परम पवित्र परमात्मा शैतान और पाप को नहीं बना सकता।

शैतान और पाप दोनों एक वस्तु हैं। ईश्वरका बनाया हुआ शैतान नहीं हो सकता। शैतान या कोई, संसार का एक तृण भी, बिना ईश्वर के बनाए नहीं बना। अतः यह बात भी

नहीं हो सकतीं कि शैतान और पाप बिना ईश्वर की इच्छा के या ईश्वरके न चाहने पर भी आपसे आप आगए। क्या शैतान और पाप ईश्वरसे भी अधिक बलवान्, प्रतापी और प्रभावशाली हैं, यदि नहीं तो अपने से आजाने पर भी जैसे माली व्यर्थ के कूड़े कर्कट को अपने बाग से खोदकर, खोदकर और झाड़ कर निकालदेता है उसी तरह क्या ईश्वर अपने संसार रूपी बागमें अपनी शक्तिभर शैतान, पाप और रोग को रहने देसकता है? इस संसार और शरीर में वही एक निरामय, नीरोग, निर्विकार, निरंजन, और आनन्दकंद ईश्वर या आत्मा व्यापक है और जहां आनन्दकंद और निर्विकार आत्मा व्यापक है वहाँ इस शरीर या संसार में रोग दोष या पाप नहीं रह सकते। अतः हमारा सिद्धान्त है कि शरीरमें रोगोंका होना सर्वथा असंभव है। इनका संसार या शरीर में अस्तित्वही नहीं है। इसका इनके न होने के कारण ही मनुष्य व्यर्थ में चिन्तित होता और अपने शरीरमें रोगों की कल्पना करके दुःखी होता है। रोग और बुराइयोंकी जड़ अज्ञान जनित कल्पना के भीतर है। अतः वास्तविक ज्ञान होनेपर अज्ञान का नाश होता है और अज्ञान के नाश होनेसे यह बात स्पष्ट समझमें आजाती है कि संसार में कहीं रोग दोष या पाप नहीं है। अज्ञानी जिसे वास्तविक तत्व का ज्ञान नहीं है वह सर्वत्र आनन्द स्वरूप परमात्मा को न देखकर सर्वत्र रोग दोष और पापों को देखता है। सर्वत्र रोग नहीं है; सर्वत्र और सर्वव्यापक तत्व यदि कोई है तो सच्चिदानन्द, आनन्दकंद

परमात्मा है। रोग, दोष और हर तरह की बुराईयां उस प्राणी के मन के भीतर है जिसे इस वास्तविक और सच्चे सिद्धान्त का ज्ञान नहीं है। अतः रोगों और बुराइयों की जड़ अज्ञान मनके भीतर है। रोग मन की अज्ञानता से उत्पन्न होते अतः यदि यह रोग जड़ से मिट सकते हैं तो वास्तविक और सच्चे ज्ञान सेही औषधियोंसे नहीं।

जैसा कि हमने ऊपर कहा है रोग रोग नहीं है। जिसे हम रोग कहते हैं वह शरीर की सफाई के लिए प्रकृति का एक नियम है। पर जिस मनुष्य को वास्तविक तत्वका ज्ञान नहीं है वह इस सफाई को एक रोग समझ कर घबड़ा जाता, चिन्तित होता और अनेक प्रकार की कल्पना करके सचमुच उसे एक दुःखदायी और महाभयंकर रोग बना लेता है। हमारा मत है कि मनुष्य स्वयम् अज्ञान के कारण व्यर्थ की कल्पनाओं से अपने को रोगी बना लेता है। सच्ची बात यह है प्रकृति वा संसार के नियम (law of the universe) हमारे शत्रु नहीं हैं; सब हमारी सहायता करने के लिए हैं, हमारे बनाए हुए हैं और हमारी भलाई के लिए हैं। विचार करके देखा जाय तो सूर्य्य, चांद, तारे, हवा, मिट्टी और अग्नि सब हमारी भलाई के लिए हैं। आत्मा ने स्वयम् अपने उपकार और लाभ के लिए इन्हें उत्पन्न किया और यह सब अब भी मनुष्य के आज्ञाकारी दास हैं। यह सब हमारी आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहे हैं, सब सेवा करने के लिए तैयार खड़े हैं,

केवल ज्ञान होने की देरी है। जिस समय वास्तविक ज्ञान होगा और यह विदित हो जायगा कि प्रकृति के तमाम नियम हमारे शत्रु नहीं मित्र हैं उस वक्त हर तरह की शंका और भय हृदय से निकल जायंगे और मनुष्य का जीवन तथा संसार नरक से स्वर्ग बन जायगा। दुःखी और रोगी मनुष्य अमर, नीरोग और आनन्दमय हो जायगा। आनन्दकंद और आनन्दस्वरूप सच्चिदानन्द से उत्पन्न हुआ यह मनुष्य भी वही है।

सारे संसारमें यही एक तत्व है और वह आनन्द स्वरूप है। अतः हमारे भीतर भी वही तत्व है और हम भी आनन्द से परिपूर्ण हैं। इस सच्चेज्ञानका वर्णन हमारे रचे हुए अनेक ग्रंथोंमें अनेक प्रकार से किया गया है। बार बार और अनेक प्रकारसे इस सिद्धान्त का वर्णन करनेका कारण यही है जिसमें बात तरह से समझ में आजाय। बिना समझ में आए विश्वास नहीं होता और बिना विश्वास के सफलता दूर रहती है।

अमर होना मनुष्यकी
इच्छा पर निर्भर है।

हमारे विचारों को सुनकर एक मनुष्य ने यह कहा कि अमर होना भी काल पाकर किसी न किसी के लिए एक बन्धन हो सकता है। बात ठीक है। पर हम यह नहीं कहते कि मृत्यु को वश में करने या अमर होने पर मनुष्य अपनी इच्छा से भी नहीं मरेगा। ज्ञान होने पर ही मनुष्य अमर हो सकता है और ज्ञान होने पर ही अमृतत्व के वास्तविक तत्व को मनुष्य समझ सकता है। सच्चा ज्ञान होने पर मनुष्य संसार के प्रत्येक बन्धन से मुक्त हो जाता है। यह सर्व सम्मतसिद्धान्त है; इसे प्रत्येक सम्प्रदाय के लोग मानते हैं। अतः जो मृत्युके बन्धन से नहीं छूटा वह मुक्त नहीं कहला सकता। यही नहीं संसार में सबसे बड़ा बन्धन मृत्यु का है। जो मृत्यु के बन्धन से बंधा हुआ है वह कभी जीवन मुक्त नहीं कहला सकता और जीते जी जो मुक्त नहीं हुआ वह मरने पर मुक्त हो जायगा इसका कोई प्रमाण नहीं है।

अनेक प्रकार की शिक्षा और ज्ञान प्राप्त करने पर भी जो इसजीवन मे मुक्त नहीं हुआ वह मरनेके अनन्तर कभी मुक्त नहीं हो सकता। अतः सच्चाज्ञान वही है जिसे जानकर मनुष्य जीवन मुक्त हो जाय। और यदि किसी सच्चे ज्ञानसे मनुष्य

जीवन मुक्त हो सकता है तो वह सच्चा ज्ञान वही है जो मनुष्य को तमाम बन्धनों से सर्वथा मुक्त कर सके। तमाम बन्धनों से मुक्त होने पर भी सबसे बड़ा बन्धन मृत्यु का यदि लगा है तो ऐसी अवस्था को हम मुक्ति कभी नहीं कह सकते। अतएव हमारे कहने का तात्पर्य्य यह है कि वास्तविक और सच्चा ज्ञान अत्यन्त स्पष्ट रूप में वही है जिससे मनुष्य मृत्यु को जीतकर सचमच जीवन मुक्त कहलाने के योग्य हो सके।

जीवनमुक्त मनुष्य जैसे मृत्युके बन्धन से छूट जाता है इसी तरह पर वह अमृतत्व के बन्धनसे भी निर्मुक्त रहेगा। इसका मतलब यह है कि जीवन मुक्त विवश हो कर अमर नहीं रहेगा किन्तु अपनी इच्छा से वह जब तक इस स्थूल शरीर में रहना चाहेगा रहेगा। यदि अपनी इच्छा से जीवन मुक्त पुरुष सच-मुच अपने स्थूल शरीर को छोड़ना चाहेगा तो छोड़ सकेगा। जीवन मुक्त की इच्छा के सामने किसी किस्म का बन्धन नहीं रहेगा। इस स्थूल शरीर का ग्रहण, त्याग या रक्षा सब ज्ञानी या जीवनमुक्त की इच्छा के अधीन रहेगा; ज्ञानी स्वयम् इनके अधीन नहीं होगा। बस, सारी पुस्तकका निचोड़ यही है।

जीवन की प्रबल इच्छा के विरुद्ध तो साधारण से साधा-रण ज्ञानहीन मनुष्य भी नहीं मरते। यह प्रायः देखा गया है कि एक वृद्ध मनुष्य कष्ट से कराह रहा है, मरना चाहता है पर कह रहा है कि हमारे लड़के को दिखा दो। वह जबतक लड़के को देख न ले मरना नहीं चाहता। वही होता है। तार दिया

जाता है, एक सप्ताह के बाद जब बम्बई से लड़का आजाता है तब इसकी मृत्यु होती है। यह ठीक है कि संसार में सबसे अधिक प्यारी वस्तु जीवन है पर अज्ञान वश किसी न किसी अवस्था में कल्पित रोगों, कष्टों और विपत्तियों से मनुष्य व्याकुल और विवश होकर मरना भी चाहता है और यह तथ्य है कि प्रत्येक मनुष्य मरता तभी है जब वह स्वयम् मरना चाहता है।

मृत्यु और रोग दोनों वास्तव में कोई ऐसे पदार्थ नहीं हैं जिनका सचमुच कहीं अस्तित्व हो। इस विषय को हमने विस्तार के साथ इसी ग्रंथ में कहा है। रोग रोग नहीं हैं किन्तु स्थूल शरीर की सफाई का एक प्राकृतिक प्रबन्ध हैं। इस विषयको हमने बड़े विस्तार के साथ अभी इस अध्याय के पहले सिद्ध किया है। प्रकृति (Nature) की सफाई के इस प्रबन्ध को साधारण मनुष्य रोग समझ कर स्वयम् अपनी कल्पना से उसे ऐसा भयंकर बना लेते हैं कि अन्तमें उन्हें मृत्यु के मुख में जाना पड़ता है। पर सच्ची बात यह है कि संसार में एकही तत्व है, वह मृत्यु वा रोग नहीं है, उसका नाम है आत्मा या परमात्मा। सारे संसार में आत्मा व्यापक है। दयालु परमात्माने रोग, मृत्यु, पाप और बुराईको नहीं बनाया और वहसचमुच नहीं बना। संसारमें बुराई, पाप, रोग और मृत्युका अस्तित्व ही नहीं है। अज्ञानसे मनुष्य रोगोंकी कल्पना करता; और दुःखी होता है। रोगों की जड़ और कारण मन

का मस्तिष्क के भीतर होता है। अतः रोगों को जड़ से अच्छा करने के लिए मस्तिष्क (Mind) वा मन का सुधार होना चाहिए। और यह स्पष्ट है कि मन और मस्तिष्क का सुधारक यदि कोई हो तो उसका नाम ज्ञान है। अतः ज्ञान ही में वह शक्ति है जो मनुष्य को नीरोग, बलवान्, युवा और अमर बनाकर जीवन्मुक्त कर सके अतः सच्चे ज्ञान को प्राप्त कर ज्ञानी अपनी इच्छा से अमर होकर मृत्यु को जीत सकता और अपने वश में कर सकता है।

यह मृत्युलोक नहीं अमरलोक है।

—※※○※※—

लोग कहते हैं यह मृत्युलोक है। यहां जो आया वह अवश्य जायगा। मृत्युलोक में कोई अमर नहीं हो सकता। पर यह बात ठीक नहीं है। हम पूछते हैं—यहां कौन आया है जो नहीं ठहरता ? क्या ये मनुष्य कहीं से आते हैं और फिर कहीं चले जाते हैं ? क्या सचमुच यहांसे लोग उठ जाते, मिट जाते और मर जाते हैं ? कभी नहीं। तुम्हारे समझने में भूल हुई है। न कोई आता है न जाता। न कोई जन्मता है न मरता। विज्ञान कहता है किसी वस्तु का नाश नहीं होता; सब अमर हैं। किसी वस्तु का अभाव या मृत्यु कभी नहीं होती। किसीकी मृत्यु या अभाव मानना भूल है। यदि यह बात ठीक है तो इसे मृत्यु लोक कहना भी व्यर्थ है। यहां किस की मृत्यु होती है ? कौन मिट जाता है ? क्या तुम्हारा मतलब इस शरीर से है ? शरीर में जितना जल है वह जलमें मिल जाता है और मिट्टी मिट्टी में। इसमें जो वायु है जो पञ्चप्राण हैं वे

वायुमें मिल जाते हैं। पञ्चतत्वों का बना हुआ शरीर यहीं के पञ्चतत्वों से बनता और फिर इन्हीं तत्वों में मिल जाता है। विचारने से यह मालूम हुआ है कि यह मनुष्य न कहीं से आता है न जाता। यह यहीं का है और यहीं रह जाता है। रूपान्तर होता है पर मृत्यु किसी की नहीं होती। फिर लोग यह क्यों कहते हैं कि जो आया है वह अवश्य जायगा। विचारने से तो न कोई आता मालूम होता न जाता। एक तरह से रूपान्तर भी नहीं होता। क्या शरीरमें जो आकाश है वह बाहर के आकाश से भिन्न है? क्या बाहर के आकाश का जो रूप है वही भीतर के आकाश का नहीं है? क्या बाहर का आकाश श्वेत है और भीतरका काला? कभी नहीं। जो गुण बाहर के आकाश में है वही भीतर के। भिन्नता जो मालूम होती है उसका कारण अविचार है विचार से भिन्नता नष्ट हो जाती है। क्या बाहर और भीतर की वायु एकही नहीं है? क्या बाहरकी अग्नि उष्ण होती है और शरीर की शीतल? कभी नहीं। अग्नि जो कार्य्य बाहर कर रही है वही शरीर के भीतर भी करती है। शरीर में आने से उसका रूपान्तर नहीं हो जाता। यही दशा जल और मिट्टी की भी है। आंख पर पित्तके चढ़ जाने से श्वेत वस्तु भी पीली मालूम होती है; श्वेत वस्तु का रूपान्तर नहीं होता, अपनी आंखों का ही दोष है। बड़े २ तत्ववेत्ताओं ने कहा है कि रूपान्तर भ्रमसे मालूम होता है; वास्तव में नहीं। वेदान्त भी कहता है कि भिन्नता, रूपान्तर और नानात्व

सब भ्रम जन्य और काल्पनिक हैं। अतः इसलोक को मृत्युलोक कहना भी भ्रम और कल्पना है। जब किसी की मृत्यु होती ही नहीं तो यह मृत्युलोक कैसे ? मरण और रूपान्तर कल्पनासे होते है अज्ञान और अविचारसे होता है। इससे मालूम होता है कि वास्तविक ज्ञान होने से मनुष्य मृत्यु को जीत सकता है।

लोग कहते हैं मृत्युलोकमें सबकी मृत्यु होती है। पर हम कहते हैं–किसी की नहीं होती। क्या आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी की मृत्यु होती है ? कभी नहीं। फिर क्या आत्माकी मृत्यु होती है ? उसको भी नहीं। फिर यहां किसकी मृत्यु होती है जो इसे लोग मृत्युलोक कहते हैं ? क्या जानवरों और वृक्षोंकी आत्मा मर जाती है ? वह भी नहीं। आत्मवादी कहते हैं किसी की आत्मा नहीं मरती; आत्मा अमर है। अच्छा तो मृत्युलोक में कौनसी ऐसी वस्तु है जो अमर नहीं है। अमर अजर और अविनाशी से उत्पन्न हुआ यह सारा संसार अजर अमर और अविनाशी है। द्वैतवादी प्रकृति या परमाणु की भी उत्पत्ति नहीं मानते। परमाणुओं को सभी अमर अनादि और अविनाशी मानते हैं। पंचतत्व भी अमर हैं। संसारका सबकुछ अमर है, अजर है, अविनाशी है। आज कलका विज्ञान भी कहता है कि किसीका अभाव नहीं होता, किसी की मृत्यु नहीं होती; सब अमर हैं। रूपान्तर क्या है ? कपड़ा सूतका रूपान्तर है। रूपान्तर होने

पर सूत कपड़ा हो जाता है। पर ज़रा निकट से देखिए अब भी प्रत्येक सूत अलग अलग है, मिलने पर भी नहीं मिले हैं। अब ज़रा सूक्ष्मदर्शक यन्त्र लगाकर भी देखिए। मालूम होगा, कि प्रत्येक सूत एक दूसरे से बहुत पृथक है। सूतका रूपान्तर हो गया सूतसे कपड़ा बन गया; पर वास्तव में यदि विचार करके देखा जाय तो किसी सूतका रूपान्तर नहीं हुआ है। सारे के सारे सूत कपड़ा होने पर भी उसी दशामें हैं, जिस दशामें वे पहले थे। उतने ही लम्बे और उतने ही पतले हैं; कुछ फरक नहीं पड़ा है। आज, यदि हमारी आंखें ऐसी न होतीं जैसी की हैं तो न मालूम यह कपड़ा कैसा दिखलाई देता। इन्हीं आंखों से दूरसे जो कपड़ा जैसा दिखलाई देता है वही आंख के अत्यन्त निकट से नहीं।

ठोस से ठोस पदार्थ भी गलकर जलवत हो जाते हैं। जल भाप बन जाता और भाप वायु में मिल जाती है। फिर यह वायु आकाश में मिल जाती है। इसी को हम लोग मृत्यु, नाश और रूपान्तर कहते हैं। इस अवस्था में आप कह सकते है कि अमुक दृढ़ और ठोस पदार्थ मिट गया—उसका नाश हो गया—अब वह संसार में न रहा। पर ऐसे यन्त्र बने हैं या इससे भी बढ़कर बनाये जा सकते हैं जिससे हम इन पदार्थों को आकाश में स्पष्ट देख सकते हैं। अतः किसी का अभाव वास्तव में नहीं होता। जलको एक वर्त्तन में रखकर आगपर चढ़ा दीजिए। सारा जल भाप बनकर उड़ जायगा। आप मोटी दृष्टि से कहेंगे कि जलका

नाश हो गया, मृत्यु हो गई; जल गया। पर जलका एक २ अणु भापके रूपमें अब भी मौजूद है; ठंढक पाकर वह फिर जल हो जायगा। अर्क खींचते वक्त यही क्रिया होती है। नीचे जलको जलाते हैं। जल भाप बनकर ऊपर उड़ता है। वर्त्तन के ऊपरी हिस्सेमें ठंडक पहुंचाई जाती है। फिर यही भाप, जल बनकर एक नलिका के मार्ग से बोतल में गिरता जाता है। जलाने से जलके एक विन्दु का भी नाश नहीं होता। जल अमर है, मिट्टी अमर है, अग्नि अमर है, वायु अमर है और आकाश अमर है। संसारके, वा इस लोक के प्रत्येक पदार्थ अमर हैं। सब अमर हैं तो मनुष्य को मृत्यु कैसे हो सकती है। सब अमर हैं तो शरीर कैसे मरेगा। जल जब जमकर पत्थर के समान हो जाता है तब भी वह जल है; गर्मी पाकर वह फिर जल हो जायगा। अधिक गर्मी से यही भाप बन जायगा फिर भी वह जल है। समुद्र का जल भाप बनकर ऊपर बादल के रूपमें उठता और जल रूपमें फिर नीचे गिरता या बरसता है। यह फिर बह २ कर उसी समुद्रमें चला जाता है जहांसे यह आया था। इसलोक के किसी अणुका कभी नाश नहीं होता। सब उतने ही बने हुए हैं जितने वह पहले थे; एक रत्ती की भी कमी नहीं हुई। एक एक अणु अविनाशी, अजर, अमर, और अनादि होने से ब्रह्म-मय और ब्रह्म हैं। अतः यह लोक ब्रह्मलोक है, अमर लोक है शिवलोक है; मृत्यु लोक नहीं है। इसके जब एक २ अणु अमर और अविनाशी हैं तो यह मृत्युलोक कैसे हुआ ?

लोग कहेंगे कि ब्रह्मलोक वह है जहां ब्रह्म रहता है, शिवलोक वह है जहां शिव रहते हैं और विष्णु लोक वह है जहां विष्णु रहते हैं। पर यह बात ठीक नहीं है। कहां ब्रह्म नहीं है? कहां शिव नहीं हैं? कहां विष्णु नहीं हैं? क्या ये लोग मृत्यु लोकमें नहीं हैं? यदि नहीं हैं तो ये सर्व व्यापक कैसे हो सकते हैं? और जो सर्वव्यापक नहीं वह क्या ईश्वर हो सकता है? ब्रह्मा, शिव, और विष्णु किसी लोकविशेषमें नहीं हैं वे मृत्युलोक में भी हैं। फ़िर, जिस लोक में निर्विकार ब्रह्मका निवास हो—जिस लोक में अजर अमर शिव और विष्णु का निवास हो—क्या वही लोक मृत्युलोक कहला सकता है? यह मृत्युलोक उसी के लिए है जो इसे समझता है या जो यह समझता है कि यहां पर मृत्यु से बचना असम्भव है। उसके लिए मृत्यु से बचना अवश्य असम्भव है। मृत्यु और रूपान्तर कल्पना मात्र है। काल्पनिक वस्तु उसीके लिए अटल है जो उसे अटल मानता है।

कल्पना स्वतन्त्र नहीं है। कल्पना आत्मा की ओरसे होती है; कल्पना हम स्वयम् करते हैं। अतः कल्पना हमारे अधीन में है, हम कल्पना के अधीन में नहीं हैं। कल्पना हमारे वश में है। हम चाहे जो काम इससे ले सकते हैं, यह चूं तक नहीं कर सकती। कल्पना ने सर्वदा हमारी आज्ञा का पालन किया है और अब भी करने के लिए तैयार है। केवल आज्ञा देने की देरी है। आजतक जैसा हमारा विश्वास था—जैसी हमारी भावना थी—वैसा इसने

किया है। इसका कुछ दोष नहीं; दोष यदि है तो हमारा है। हम जब तक मृत्यु को जीतना असम्भव मानते हैं तब तक इसने सचमुच उसे वैसा ही बना रक्खा था। अब हमारा विचार, ज्ञान और बुद्धि बदल गई है; बस, इसी के अनुसार यह भी बदल गई है। अब हम अपने शरीर को अमर मानते हैं बस यह भी अपना काम कर चुकी; इसने अपने असीम और अपार बल से शरीर को अमर बना दिया है।

मनुष्य एक मनोमय प्राणी है। यह धीरे २ वैसा ही होता जाता है जैसा सोचता है, जैसा विश्वास करता है या जैसा होना चाहता है। विश्वास वैसा ही होता है जैसा ज्ञान होता है। ज्ञान के बदल जाने से विश्वास भी बदल जाता है। "यह लोक मृत्युलोक है; यहां मरना आवश्यक है"—इस ज्ञान ने मनुष्य जाति का बड़ा अपकार किया। इस भ्रमपूर्ण ज्ञान से लोग यही विश्वास करने लगे थे कि सचमुच यह मृत्युलोक है यह दुःख से पूर्ण है। सुख से पूर्ण अमर लोक, ब्रह्मलोक या शिवलोक कहीं अलग है। क्या वह मंगलमय शिव परमात्मा कहीं एक जगह रहता है? क्या वह सर्वव्यापक नहीं है? क्या वह सर्व व्यापक और मंगलमय परमात्मा यहां नहीं है? यदि वह मंगलमय परमात्मा यहां मौजूद है तो यहीं अमंगल, दुःख और मृत्यु कैसे रह सकती है? दुःख मृत्यु और अमंगल की सृष्टि लोगों के भ्रमपूर्ण और विपरीत ज्ञान ने किया है। सच्चाज्ञान यह है कि वह मंगलमय शिव परमात्मा सर्व व्यापक

है। वह यहां चारों ओर भरा हुआ है। सृष्टि का एक एक अणु उसी से उत्पन्न हुआ और वही है। सब शिव हैं, सब मंगलमय हैं, और सब अमर हैं। मृत्यु अज्ञान में है। मृत्यु का जन्म ही नहीं हुआ। सब परमात्मा से उत्पन्न हुए। परमात्मा अविनाशी और अमर है। अमर और अविनाशी परमात्मा से मृत्यु की उत्पत्ति नहीं हो सकती। अतः मृत्यु का संसार में अस्तित्व ही नहीं है; वह कोई वस्तु नहीं। उसकी सृष्टि ही नहीं हुई अज्ञान वश भ्रमसे लोग उससे डरते और मरते हैं। मृत्यु, दुःख और अमंगलकी भावना को हृदयसे निकाल देना चाहिए। यह लोक वा यह संसार दुःखपूर्ण नहीं है यह सुख, आनन्द और आनन्दमय परमात्मा से भरा हुआ है। इसी तत्व को जानकर मनुष्य अमर हो जायगा।
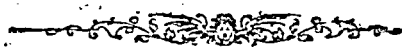
विश्वास और इच्छाशक्तिद्वारा अमर होने का उपाय।

मनुष्य में इच्छा वा मनकी ही प्रधानता है।।यह मनन करता है-इसमें मन की प्रधानता है-इसी से इसका नाम मनुष्य है। मनुष्य का यही अर्थ है। अंग्रेजी में मनुष्य को (Man) मैंन कहते हैं। पर यह "मन" भी पढ़ा जा सकता है। वास्तवमें यह मैंन (Man) नहीं किन्तु यह मन ही है। अंग्रेजी में मन भी इसी तरह से लिखा जायगा। यह लिखा गया था "मन" पर कुछ दिनों के बाद लोग मैंन पढ़ने लगे। संस्कृत का "मन" अथवा "मनु" धातु बहुत प्रसिद्ध है। मनुष्य, मनु और मन ये तीनों शब्द एक ही (मन्-अवबोधने) धातु से निकले हैं। पूर्वोक्त तीनों शब्दों का एक ही अर्थ है। विचारने से मालूम होता है, कि मनुष्य, वही, उतना ही और वैसा ही है जैसा कि उसका विचार है। एक महात्मा ने अंग्रेजी में कहा है As a Man Thinketh so is he.

मनुष्य के सारे शरीर में मनका राज्य है। शरीर में वही होता है जो मन चाहता है। जब हम चाहते हैं, तब शरीर को समेट लेते और जब चाहते हैं तब फैला देते हैं। जब चाहते हैं तब बैठते और जब चाहते हैं तब खड़े हो जाते हैं। शरीर भर में इच्छा-शक्ति

(Will-power) की विजली वड़ी तेजी के साथ काम कर रही है। यदि मन में कोई वड़ी चिन्ता हो जाय तो हाथ पैर सब काम करना छोड़ देते हैं। चिन्तासे शरीर निर्बल हो जाता, निस्तेज हो जाता और भूख वन्द हो जाती है। कितने चिन्तित होकर बेहोश हो जाते और मर जाते हैं। मन प्रसन्न हुआ कि सारा शरीर खिल उठा। राज्य हो, धन हो, शरीर स्वस्थ हो और सुख का सारा समान हो पर मन के भीतर यदि कोई दुःख है, चिन्ता है तो सब मिट्टी है। मन का शरीर पर बहुत वड़ा प्रभाव पड़ता है। मनंका रंग वदलते ही शरीर का रंग वदल जाता है। आज कल यूरोप और अमेरिका में वहुत से डाक्टर केवल मनोवल द्वारा सब रोगोंकी चिकित्सा करते हैं। मन जैसा सोचता है-जैसा विचार करता है-जैसा उसका विश्वास होता है-वैसा उसका शरीर भी बनने लगता है। इस वातको इस समय सभी वैज्ञानिक मानते हैं। यदि यह ठीक है तो जो मनुष्य आत्मज्ञान वा ब्रह्मज्ञानद्वारा यह विचार कर चुका है कि, सब कुछ ब्रह्म है उसके लिए सब कुछ ब्रह्म ही है। यह शरीर भी ब्रह्म है। ब्रह्म अमर है,अतः यह शरीर भी अमर है। इस शरीरके अणु २ और रोम २ में वह अविनाशी अजर और अमर ब्रह्म व्यापक है। अतः जहां ऐसा ब्रह्म व्यापक है उस शरीर को कौन ऐसा है जो मार सकता है यदि आपका मनही स्वयम् नहीं मरना चाहता। मन की शक्ति को सभी मानते हैं। अतः

यदि हम नित्य भावना करें कि हमारा शरीर अमर हो जाय तो अमर हो जायगा। और यदि, भावनासे शरीर नीरोग हो सकता है, बलवान् हो सकता है, और प्रसन्न हो सकता है तो इसी भावनासे, इसी मन से, अथवा इच्छाकी इसी शक्तिसे क्या वह अमर नहीं हो सकता ? मन की शक्ति अपार है। इसमें सर्वशक्तिमान् का अंश है। अंश क्या यह स्वयम् सर्वशक्तिमान् है। तुम स्वयम् मानते हो कि मन तुम्हारे शरीर को अमर नहीं कर सकता इसी लिए वह वैसा नहीं कर सकता। भावना रोगी को नीरोग कर सकती है, पर उसी समय जब कि तुम मानते हो कि भावना द्वारा मनुष्य नीरोग हो सकता है। मनुष्य मनोमय है। यदि हम स्वयम् मानते हैं कि हम भावना से नीरोग नहीं हो सकते तो भावना हमें नीरोग नहीं कर सकती। इस तरह के विचारों से मनुष्य भावना की शक्ति को क्षीण कर देते हैं। लोग अमर होने की इच्छा करते हैं पर अपनी इच्छा की अपार शक्ति पर विश्वास नहीं रखते। लोग कहते हैं कि अमर होना असम्भव है—ऐसे विचारों से भावना, विचार या इच्छा की शक्ति सर्वथा निर्बल पड़ जाती है। इच्छा करो तो विश्वास के साथ तुम्हारी इच्छा पूरी होगी। भावना की शक्ति पर दृढ़ विश्वास रक्खो। भावना अवश्य फलवती होगी। तुमने आत्मज्ञान की पुस्तकें पढी हैं, खूब सोच लिया है कि यह ज्ञान ठीक है अतः अब उस ज्ञानपर दृढ विश्वास रक्खो तो वह अवश्य ठीक होगा।

यह सारा संसार ब्रह्म है। अतः शरीर भी ब्रह्म है। ब्रह्म चेतन है। चेतनमें विचार होता है, इच्छा होती है और वह मनोमय होता है। अतः शरीर भी मनोमय है चेतन है और विचार स्वरूप है; अर्थात् यह वैसाही है जैसा तुम ख्याल करते हो। अतः यदि तुम वेदान्तके इस सिद्धान्त को नहीं समझते तब भी भावना करो कि हम अमर हैं तुम अवश्य अमर हो जाओगे। पर भावना की शक्ति पर दृढ़ विश्वास रक्खो इस वात को तत्व से समझ लो कि भावना या मन में-शरीर के भीतर-उन परमाणुओं के लाने की पूरी शक्ति है जिससे सारा शरीर अमर हो जायगा।

सवेरे ज्योंही नींद टूटे चारपाई पर ही बैठ जाओ और सबसे पहले यही भावना करो कि हम अमर हैं, नीरोग हैं, निरामय है और निर्विकार हैं। भावना करो कि तुम्हारे चारों तरफ अजर, अमर और निरामय ईश्वर फैला हुआ और व्यापक है। ईश्वर अमर है और अमृत स्वरूप है। अतः भावना करो कि चारों तरफ अमृत भरा हुआ है। चारों तरफ अमृतका समुद्र है। भावना करो कि हम अमृतके समुद्रमें बैठे हुए हैं और चारों तरफ से इस अमृत की लहर हमारे शरीर के भीतर आ रही है। भावना करो कि यह लहर हमारे शरीर में प्रवेश कर हमारे शरीर को अमर बना रही है और हमारा शरीर अमर हो गया। इतना ही नहीं यह भी भावना करो कि वह अमृत स्वरूप ईश्वर हमारे शरीर के अणु २ में व्यापक है। व्यापक क्या हमारा

सारा शरीर नहीं हैं। भावना करो कि हमारा शरीर अमर है, नीरोग है और शुद्ध है। भावना करो कि हमारा शरीर हमारे मन और विचार के अधीन में है। हम चाहते हैं कि हमारा शरीर अमर रहे, अतः यह अवश्य अमर रहेगा। शरीर के जितने अणु हैं सब चेतन हैं, सब विचारमय हैं। जैसी भावना होती है वैसे ही ये बन जाते हैं। यदि हमारी भावना है कि हम नहीं मर सकते तो हम कभी नहीं मर सकते। भावना करना चाहिए कि हम अजर अमर और अविनाशी हैं और यह शरीर भी वही है जो हम हैं।

कोई दवा हो यदि उस पर विश्वास नहीं है तो वह फायदा नहीं कर सकती। लोग साधुओं की राख से अच्छे हो जाते हैं। क्या राख में कुछ है? कुछ नहीं। जो कुछ है वह विश्वास में है। जिस साधु पर हमारा विश्वास है हम उसकी विभूति खाकर अच्छे हो जाते हैं। महात्मा ईसामसीह ने जिसे नीरोग किया उससे यही कहा है कि अगर तुम विश्वास के साथ कहोगे कि यह पर्वत हट जाय तो वह हट जायगा। विश्वास में बड़ा बल है। मन्त्र में जो कुछ बल है वह विश्वास ही का है। मन्त्र के पढ़नेवालों को विश्वास है कि इसके पढ़ने से बिच्छू या सर्प का विष उत्तर जावगा। इसी तरह जो झड़ाने फुंकाने आते हैं उनको भी विश्वास रहता है। बस मन्त्र अपना प्रभाव बिना दिखाए नहीं रहता। यह मन्त्र का प्रभाव नहीं है, यह विश्वास का प्रभाव है। हमने बहुतों को बिना मन्त्र

पढ़े ही झाड़कर अच्छा कर दिया है पर उनके विश्वास के लिए होंठ हिलाते जाते थे। कितने रोगियों को केवल पानी फूंक कर अच्छा कर दिया है। यह विश्वास का ही बल था। प्रसिद्ध कवि, गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है—

"भवानीशङ्करौ वन्दे,
श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।"

इस श्लोक में गोस्वामी जी ने ईश्वर को विश्वास रूप ही माना है। यह सर्वथा सत्य है। जैसा जिसका विश्वास है वैसा ही उसका ईश्वर है, वैसी ही उसकी दुनियां है और वैसाही उसका शरीर है। ईश्वर उसकी उतनी ही भलाई कर सकता है जितना जिसको विश्वास है कि वह कर सकता। सबका ईश्वर सर्वशक्तिमान् नहीं है। जो ईश्वरको सर्वशक्तिमान् मानता है उसीका ईश्वर सर्वशक्तिमान् है। वास्तव में मनुष्य के लिए ईश्वर उतना ही है जितना मनुष्य का विश्वास है। ईश्वर मनुष्य को नहीं मानता किन्तु मनुष्य ही ईश्वर को मानता है। सबने अपना अपना ईश्वर अपने २ ज्ञानानुसार मान रक्खा या बना रक्खा है। जैसा जिसने मान रक्खा है—जैसा जिस का विश्वास है-उसके लिए ईश्वर वैसा ही है। अतः विश्वास ही ईश्वर है। जिसका जैसा और जितना विश्वास है उसके लिए उसका ईश्वर भी वैसा और उतना ही है। जिसका यह विश्वास है कि ईश्वर हमें मार सकता उसे वह अवश्य मार सकता है। पर इसी तरह

जिसका यह विश्वास है कि ईश्वर हमें अमर कर सकता है उसे ईश्वर अवश्य अमर कर सकता है। हमारी भावना और विश्वास ही हमारा ईश्वर है। सच्ची बात यह है कि मनुष्य अपना ईश्वर आप है। ईश्वर उससे अथवा उसके विश्वास और भावना से पृथक नहीं है। मनुष्य अपना विधाता आप है; वह स्वयम् अपने भाग्य को जैसा बनाता है वैसा बनता है। मनुष्य का बन्ध, मोक्ष, मरना अथवा जीना सब उसके विश्वास अथवा मनके अधीन हैं।

"मन एव मनुष्याणाम्,
कारणं बन्ध मोक्षयोः"।

सजीव का अमृतत्व और इच्छा का प्रभाव।

—:o:—

निर्जीव वस्तुका जो अङ्ग कट जाता है वह फिर जुटता वा भरता नहीं। इसी तरह से सूख जाने या निर्जीव हो जाने पर एक पतला वृक्ष मोटा नहीं होता। पर हरा वृक्ष बराबर बढ़ता और मोटा होता है। जब मनुष्य बीमार पड़ता है तो कितना दुबला हो जाता है? दुबला क्या अस्थिमात्र भी रह जाने पर, यदि शरीर सजीव है तो नीरोग होने पर, वह फिर मोटा हो जाता है। पर मृत शरीर या मृत वृक्षमें इस प्रकार का परिवर्त्तन नहीं होता। यह विषय अत्यन्त विचारणीय है कि इसका कारण क्या है। सजीव शरीर में यदि कोई घाव होता है तो वह फिर भर जाता है पर निर्जीव शरीरका घाव कभी नहीं भरता। इसका कारण यही है कि सजीव शरीर चाहता है, कि हमारा घाव भर जाय, हमारा दुबला शरीर मोटा हो जाय और हमारा रोग अच्छा हो जाय। पर निर्जीव नहीं चाहता; उसमें इसकी इच्छा ही नहीं होती। इच्छा ही क्या निर्जीव को तो इस बात का ज्ञान ही नहीं है कि हमारे किसी अङ्गमें घाव है। इच्छा और द्वेष, ज्ञान होने पर होता है और ज्ञान सजीव को होता है; निर्जीव को नहीं। निर्जीव का घाव इसलिए नहीं

भरता कि उसे उस घाव को अच्छा करने की इच्छा ही नहीं है। वह यह भी नहीं जानता कि हमारे शरोरमें घाव है या नहीं। इससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि उसीका घाव भरता या अच्छा होता है जिसमें उसके अच्छा करने की इच्छा होती है। इच्छा शक्ति (Will power) शरीर के घाव को अच्छा कर सकती, रोगी शरीर को नीरोग कर सकती और दुबले को मोटा कर सकती है।

अब देखना यह है कि यदि इच्छा यह सब कर सकती है, तो वह, वृद्ध को युवा ओर मर्त्य को अमर भी कर सकती है। यदि इच्छा शरीर की दशा बदल सकती है—यदि शरीर इच्छा के इतने अधीन में है—यदि इच्छा अस्थिमात्र शरीर को खूब मोटा कर सकती और रोगी को सर्वथा नीरोग कर सकती है—तो क्या वह बुड्ढे को युवा नहीं कर सकती? फिर प्रश्न यह है कि जो इच्छा इतना कर सकती है—जिसमें इतनी शक्ति है—वह क्या शरीर को अमर नहीं कर सकती?

कुछ लोग यह भी कहते हैं कि इच्छा कुछ नहीं है। सजीव का घाव आप से आप भर जाता है। यह गुण उसी सजीवता में है। हम कहते हैं कि सजीवता वा सजीव में भेद क्या है? जिसमें इच्छा, द्वेष और प्रयत्नादि हों वही सजीव है। जो सोचता विचारता वा इच्छा करता है वही सजीव है। लोग कहते हैं कि सजीव शरीरमें दो पदार्थ हैं-एक पञ्चतत्वका बना शरीर,और दूसरी

आत्मा जो सोचती,विचारती वा इच्छा करती है। मरने पर क्या नहीं रह जाता? वही, इच्छा करने वाला नहीं रह जाता। सजीवता जीवन या इच्छा में कुछ भेद नहीं है। जो सजीवता है वही इच्छा है। अतः जो लोग कहते हैं कि सजीवता ऐसा करती है वे भी इस सिद्धान्त से अलग नहीं जाते। बात वही है जो हम कहते हैं।

सजीवता या इच्छा में परिवर्तन करने की बड़ी शक्ति है। इच्छा में परिवर्तन होते ही शरीर का परिवर्तन होने लगता है। देखते २ शरीर लाल हो जाता, भयंकर हो जाता और कभी सौम्य हो जाता है। क्षणमात्र में यह उदास हो जाता और कभी क्षण-मात्र में ही प्रसन्न हो जाता है। फोड़ा, फुन्सी, ज्वर, खांसी आदि सब प्रकार का परिवर्तन सजीव शरीर में ही होता है। सजीव वृक्ष ही नित्य बढ़ता, मोटा होता, फूलता और फलता है। पर एक सूखे काठ में इतना या इस प्रकार के परिवर्तन नहीं होता। अतः यह सारा परिवर्तन सजीवता के ही अधीन में है। इसी का अस्तित्व इन सभों को सिद्ध करता है। सजीवता और इच्छा-शक्ति के एक होने के कारण हम यह कह सकते हैं कि यह सारा परिवर्तन या रूपान्तर इच्छा के ही वश में है। इच्छा जिस प्रकार का रूपान्तर चाहे कर सकती है—इच्छा जिस प्रकार का परिवर्तन चाहे कर सकती है। अतः इच्छा-शक्ति यदि चाहे तो वह शरीर को अमर कर सकती है। पर इच्छा दृढ़ हो और हमें उसकी

अनन्त शक्ति पर विश्वास हो। लोग कहते हैं कि, इच्छा तो क
हैं पर इच्छा ही करने से कोई बात नहीं हो जाती। यह विच
वा सिद्धान्त इच्छा की शक्ति को घटा देती है। इच्छा में दृ
शक्ति है वह हमें अमर कर सकती है। इसपर दृढ़ विश्वास हो
चाहिए। इच्छा की शक्ति पर विचार करो मालूम होगा, i
संसार का सारा चमत्कार इसी का है।

सुन्दर से सुन्दर फूल जब तोड़ लिया जाता है—जब वह
सजीव वृक्ष की सजीव डाली से अलग कर लिया जाता है-
उसकी सारी सुन्दरता नष्ट हो जाती और वह मुर्झा जाता है
चिड़ियों की चहचहाहट फूलों की सुन्दरता और पशुओं की
फांद और आनन्दोल्लास का सारा कारण कौन है ? क्या इ
कभी आप ने विचार किया है। इन सब बातों का कारण ये
इच्छाशक्ति है जिसका सजीवता के साथ अकाट्य सम्बन्ध

सजीवता, जीव वा आत्मा यह तीनों पर्य्यायवाची शब्द
तीनों एक हैं और एक ही तत्व के तीन नाम हैं। सजीव में इच
होती है और आत्मा के साथ मन रहता है। आत्मा, मन अं
इच्छा शक्ति तीनों एक हैं। इच्छाशक्ति, आत्मबल वा मनो
बहुत बड़ा बल है।

वृक्षों की साधारण इच्छाशक्ति या उनकी साधारण सजी
यदि फूलों को इतना सुन्दर बना सकती है तो क्या मनुष

असीम आत्मबल और उनकी प्रबल इच्छाशक्ति उन्हें मनोहर, सुन्दर नीरोग, युवा और अमर नहीं बना सकती। यदि एक सजीव वृक्ष पतझड़ के बाद कोमल और सुन्दर पत्तियों से लदकर फिर हरा भरा हो सकता है तो क्या एक मनुष्य यदि सचमुच अपनी दृढ़ इच्छा और विश्वास के साथ चाहे तो वृद्ध, रोगी और दुर्बल होकर भी फिर सुन्दर, नीरोग और युवा नहीं हो सकता? और यदि सजीवता, चेतनता वा इच्छाशक्ति में इतना बल है—यदि इच्छाशक्ति द्वारा मनुष्य वृद्धसे युवा हो सकता और रोगीसे नीरोग हो सकता है तो दृढ़ इच्छाशक्ति द्वारा मनुष्य अमर भी हो सकता है। अपनी इच्छाशक्ति के अपार बल को न जानकर मनुष्यजाति ने अपनी बहुत बड़ी हानि की है। इच्छाशक्ति ही वह चिन्तामणि है जिसे पाकर मनुष्य अपने तमाम मनोरथों को पूर्ण कर सकता है। इच्छाशक्ति ही वह कामधेनु है जिसे पाकर मनुष्य देवता हो जाता है। यह सजीवता, जीव वा आत्मा ही वह कल्पवृक्ष है जिसकी छाया में आकर मनुष्य सब कुछ पा सकता है।

अमर होने की आवश्यकता

आजकल सभ्यता की उन्नति बड़े वेगसे हो रही है। मनुष्य ज्यों २ सभ्य होता जा रहा है त्यों २ साहित्य की भी बड़े वेग से उन्नति हो रही है। साहित्य की उन्नति से ज्ञान, विज्ञान और दर्शन शास्त्र की चर्चा भी बढ़ती जा रही है। विज्ञान और दार्शनिक विचारों की उन्नति से मनुष्य का मानसिक बल दिनों दिन बढ़ रहा है। पर इस जगह विचारने की बात यह है कि विद्या की उन्नति के साथ २ शारीरिक बल की अवनति हो रही है; इसका ह्रास हो रहा है। विद्या, ज्ञान, सभ्यता और मनोबल में जितनी उन्नति हो रही है उतनी ही पशुबल या शारीरिक बल की अवनति हो रही है।

विद्वान् और सभ्य पुरुषों की अपेक्षा जंगली और असभ्य पुरुष अधिक पुष्ट होतेहैं। जंगलीमनुष्यों या पशुओं में रोग वा बीमारी नहीं है; ये रोगी वा बीमार नहीं देखे जाते। जंगली पशुओं में डाक्टर, वैद्य वा हकीम नहीं देखे गए। पर यहां सभ्य संसार में इसकी भरमार है। इन सब बातों से यह स्पष्ट प्रकट होता है कि सभ्यता के साथ २ शारीरिक बल का क्रमशः ह्रास हो रहा है। इस शरीर बलकी कमीसे संतानोत्पादिनी शक्ति भी कम हो रही है। असभ्यों के

जितने संतान होते हैं उतने सभ्यों के नहीं होते। अतः इस दृष्टिसे वह दिन बहुत निकट है कि सभ्यता जब अपने उच्च शिखर पर पहुंचेगी और संतानोत्पादिनीशक्ति सर्वथा लुप्त हो जायगी। सभ्यता के साथ २ संतानोत्पादिनीशक्ति ज्यों २ घटेगी त्यों २ जन्म की अपेक्षा मृत्यु की संख्या बढ़ती जायगी। इसका फल यह होगा कि संसार किसी दिन जन-शून्य हो जायगा। पर ऐसा हो नहीं सकता ज्यों २ रोग बढ़ता जाता है त्यों २ नयी २ औषधियां भी निकलती जाती हैं। एक मार्ग के रुकने पर दूसरा मार्ग आप से आप निकल आता है। आवश्यकता ही आविष्कारों की जननी है। अतः प्रकृति देवी इसका प्रबन्ध कर रही हैं अब वह विद्या निकल गई जिससे मनुष्य अमर हो जायगा। संतानोत्पत्ति बन्द हो जायगी; पर यह भूगोल जन शून्य न होगा। क्योंकि लोग मनोबल की इतनी उन्नति करेंगे कि इसके द्वारा अमर हो जायंगे।

बड़े २ ज्ञानी, विद्वान् और दार्शनिक जो शारीरिक बल की परवा न करके आत्मबल अथवा मनोबल की ओर दौड़ रहे हैं वे मूर्ख नहीं हैं—वे घाटे में नहीं हैं वे समझ गए हैं कि मनोबल शारीरिक बल से कहीं अधिक कार्यसाधक है। और अन्तमें मनो-बल द्वारा शरीर का बल भी खूब बढ़ाया जा सकेगा।

कुछ विद्वान् और सभ्य पुरुष ऐसे हैं जो हबशियों, वनेचरों, जंगलियों और असभ्यों से कई गुना अधिक बल रखते हैं। इसका

कारण यह है कि मनुष्य ने अपने विचार, विद्या वा मनोबल द्वारा ऐसी ऐसी युक्तियोंको निकाला है कि जिसके अभ्याससे मनुष्य आशातीत बलवान् हो सकता है। जैसे, कसरत, कुश्ती और दण्ड मुद्गरादि। सौ दण्ड करने की अपेक्षा दिन भर कुदार चलाने में कहीं अधिक मिहनत पड़ती है। पर कुदार का चलाने वाला इन पहलवानों की तरह बलवान् नहीं होता। इसका कारण यह है कि कुदार का चलानेवाला बल बढ़ाने के लिए कुदार नहीं चलाता; वह चलाता है खेत के लिए, अथवा अपनी मजदूरी के लिए। पर पहलवान जितनी देर तक कसरत करता है यही सोचता है कि इससे हमारा बल बढ़ रहा है। कुदार चलाकर कोई अकड़ कर नहीं चलता। पर जो मनुष्य १०० दण्ड भी करता है वह रास्ते में थोड़ा अकड़ कर चलता है कसरत करने से उसे यह विश्वास हो जाता है कि अब हमारा बल बढ़ गया है।

कसरत सभ्यों द्वारा निकाली गई हैं। लोगों ने विचार कर यह समझा कि इस तौर से करने पर थोड़ी देर की मिहनत से अधिक बल बढ़ेगा। इसी तरह, मनुष्य अब आगेकी ओर, भी विचार कर रहा है। अब सभ्य संसार को यह मालूम हो गया कि मन, विचार अथवा आत्मबल शरीरबल से बहुत अधिक महत्व रखताहै। इसके विकाससे शरीर भी बहुत बलवान् होसकताहै। सभ्यताकी उन्नति से शरीर का बल घट तो अवश्य गया था, पर इस सभ्यता ने भी मनोबल से इतना काम लिया है कि इसके द्वारा शरीर का बल खूब

बढ़ रहा है। नए २ प्रकार की कसरत, योग, प्राणायाम और पौष्टिक भोजनादि सभ्यता के ही निकाले हुए हैं। इनसे बहुत से मनुष्यों ने अपना शारीरिक बल असभ्यों की अपेक्षा कहीं अधिक बढ़ा लिया है।

आजकल मनोबल का आश्चर्य जनक उपयोग हो रहा है। पाश्चात्य देश के कितने व्यवसायी अपने मनोबल द्वारा ग्राहकों का चित्त खींच लेते हैं। मनोबल द्वारा बहुत से व्याख्यानदाताओं ने अपने श्रोताओं पर अद्भुत् प्रभाव डाला है। कितने राजाओं और सेनापतियों ने मनोबल द्वारा अपनी प्रजा और सेनासे वह काम लिया है जो शरीर की शक्ति से परे है। मनोबल द्वारा शेर भगाया जा सकता और मोटर रोकी जा सकती है। सभ्यता की उन्नति से शारीरिक शक्ति घट गई है। अब लोग दिनभर में पैदल ३० या ४० कोस नहीं जा सकते। पर सभ्यता ने भी मनोबल और विद्या की उन्नति से ऐसे २ यन्त्र तैयार किए हैं कि मनुष्य उसका पँच-गुना अधिक जा सकता है। मतलब यह है कि सभ्यता और विद्या की उन्नति से हानि की अपेक्षा लाभ कई गुना अधिक है। पर स्मरण रहे कि इस जमाने में जब कि विद्या और सभ्यता बड़े वेग से उन्नति कर रही है, मनोबल की विशेष सहायता बिना काम नहीं चल सकता। विद्या में लग जानेसे यद्यपि शरीर बलहीन हो गया है पर इसी विद्या और ज्ञान द्वारा हमलोग अपने मनोबल का इतना विकास कर सकते तथा उससे इतना काम ले सकते हैं कि यह शरीर फिर पहले की अपेक्षा कई गुना अधिक बलवान् और शक्तिशाली

हो सकता है। विद्या के प्रचार ने यद्यपि विद्वानों को मूर्खों की अपेक्षा विशेष रोगी बना दिया है पर विद्वान् भी यदि ब्रह्मज्ञान द्वारा अपने मनोबल से काम लेंगे तो उनका शरीर मूर्खों की अपेक्षा कई गुना अधिक नीरोग और स्वास्थ्ययुक्त होगा। विद्वान् अपने आत्म-ज्ञान और आत्मबलका उचित उपयोग कर मूर्खों की अपेक्षा सब बातों में आगे रह सकते हैं। आत्मबल और मनोबल का सामना शरीर का बल नहीं कर सकता। आत्मबल का ही नाम मानवी-शक्ति है। केवल शरीर का बल पशुबल है। मनुष्य का सबसे बड़ा कर्त्तव्य आत्मबल का उपार्जना करना है। इस आत्मबल अथवा मनो-बल की उन्नति होने पर वैद्यों की आवश्यकता नहीं रहजायगी। मनो-बल के उपयोग से मनुष्य पूर्ण रिति से नीरोग हो जायगा। और यदि मनोबल के उपयोग से हम अपना स्वास्थ्य ठीक रख सकते हैं तो क्या इसी मनोबल के उपयोग से अमर नहीं हो सकते ? स्वस्थ वही है जिसके शरीर में किसी प्रकार का विकार नहीं है। जो मनोबल द्वारा विकार को निकाल सकता है उसके लिए मृत्यु को निकाल देना कठिन नहीं है। मनोबल द्वारा रोगी अपने शरीर में स्वास्थ्य को लासकता है यह बहुत से लोग मानते हैं। पर हम पूछते हैं क्या स्वास्थ्य और जीवन दोनों एक ही पदार्थ नहीं हैं। मनोबल द्वारा स्वास्थ्य का लाना वा जीवन का लाना दोनों एक ही बात है। जीवन को लाना या मृत्यु को टाल देना दोनों में कुछ भेद नहीं है।

अतः यदि मनोबल द्वारा शरीर का गया हुआ स्वास्थ्य फिर आसकता है तो मनुष्य अमर भी हो सकता है। जो रोगी और वृद्ध नहीं हो सकता वह थोड़ा यत्न करने पर मर भी नहीं सकता। अब अमर होने तथा मनोबल से काम लेनेकी आवश्यकता भी है। कारण यह है कि सभ्यताकी उन्नति उस ओर बढ़ती जाती है कि यदि मनुष्य मनोबलसे काम न लेगा तो इसको शारिरिक शक्ति सर्वथा क्षीण हो जायगी और संतानोत्पादिनी शक्ति यहां तक कम हो जायगी कि सृष्टि का ही लोप हो जायगा।

इसलिए सृष्टि को रखने के लिए अमर होने की आवश्यकता केवल मनुष्यों ही को नहीं है प्रकृति को भी है। अब प्राकृतिक रूप में सृष्टि के नियमानुसार मानसी शक्ति और आत्मबल का विकास होगा और इच्छाशक्ति तथा आत्मबल के विकास से मनुष्य अमर हो जायगा।

महात्माओं के शीघ्र मरने का कारण।

हमारे भारतवर्ष के बहुत से महात्माओं की आयु बहुत कम हुई है। महात्माओं में बहुत कम ऐसे हुए हैं जो अधिक दिन तक जीवित रहे हों। कारण क्या है कि यह लोग संसार में अधिक दिन तक न ठहर सके ? यह प्रश्न धार्मिक संसार में प्रायः उठा करता है। धार्मिक संसार इस बात को जानने के लिए बहुत ही उत्सुक देखा गया है।

जिन लोगों ने बहुत बड़े २ काम किए-जिन लोगों ने संसार का बहुत बड़ा उपकार किया है-उन लोगों की आयु यदि बड़ी होती तो संसार का और भी उपकार हुआ होता। पर कभी २ लोगों को हृदय में यह सोचकर बड़ा दुःख होता है कि ऐसे लोग अधिक दिन तक न ठहर सके। अतः यह प्रश्न सचमुच बड़े महत्वका है कि महात्माओं के इस अल्पायु का कारण क्या है ?

हमने इस प्रश्न पर अच्छी तरह विचार और मनन किया है। हमारे विचार ने इस प्रश्न का जो उत्तर दिया है वह हमारे पाठकों को बहुत ही अद्भुत और विचित्र मालूम होगा। हमारा यह निम्न-लिखित सिद्धान्त अद्भुत वा विचित्र भले ही हो पर हमारी समझ

में यह सत्य और वास्तविक है। हो सकता है कि हमारा यह सिद्धांत प्राचीन ऋषियों और मुनियों से न मिले, पर इस विषय में हमारे पास ऐसा दृढ़ प्रमाण या युक्ति है कि पाठकों की बुद्धि इसे अवश्य स्वीकार करेगी। वास्तव में मनुष्य उसी को स्वीकार करता है जिसे उसकी बुद्धि स्वीकार करती है। इस संसार में सबसे बड़ी वस्तु बुद्धि वा ज्ञान है। अतः अपनी बुद्धि को पक्षपात रहित और स्वतन्त्र करके विचार कीजिए कि यह हमारा निम्नलिखित सिद्धान्त कितना सत्य और वास्तविक है।

हमारे भारतवर्ष के साधु और महात्मा प्रायः विरक्त और ज्ञानी होते हैं। इन लोगों का सिद्धान्त यह होता है कि यह संसार दुःख-मूल है यहां पर सिवाय दुःख के सुख नहीं है। यह संसार एक दुःख का समुद्र है। इसका तर जाना ही परम पुरुषार्थ है। हमारे प्राचीन महात्माओं का यह सिद्धान्त है कि यह दुःखपूर्ण संसार जहां तक जल्द छोड़ा जासके छोड़ देना चाहिए। बस यही कारण है कि ये महात्मागण बहुत जल्द संसार को छोड़ देते हैं। अथवा यह कहिए कि संसार ही इस बात से महात्माओं से रुष्ट होकर उन्हें शीघ्र छोड़ देता या अलग करदेता है। शत्रु का साथ सभी छोड़ देते हैं। महात्मा का शत्रु संसार और संसार के शत्रु महात्मा हैं। अतः संसार भी महात्माओं को अपना शत्रु समझकर जहां तक होता है जल्द छोड़ देता है। अपने प्रिय के पास सभी रहते हैं; कोई अपने द्वेषी

के पास नहीं ठहर सकता। महात्मा लोग ईश्वर को प्यार करते और संसार से घृणा करते हैं। महात्मागण कहते हैं कि संसार पापपूर्ण है; वह मनुष्य पापी है जो ईश्वर को छोड़कर इस संसार के मायाजाल में फंसता है। मतलब यह है कि महात्मा का संसार से द्वेष है अतः संसार भी महात्माओं से द्वेष करता और उनसे शीघ्र ही पृथक् हो जाता है।

महात्मा कहते हैं कि यह संसार एक सराय है, थोड़े दिनों के लिए यहां आ गये हैं; इसका और हमारा क्या सम्बन्ध ? यही कारण है कि महात्मा लोग अधिक दिनों तक यहां नहीं ठहरते, किन्तु शीघ्र वहीं चले जाते हैं जहां पर यह अपना मकान मानते हैं। जो संसार को सराय मानता है वह संसार में अधिक दिन तक नहीं रह सकता। संसार भी कहता है कि हम मुसाफिरों को यहां पर अधिक दिनों तक न ठहरने देंगे। मुसाफिरों से कौन प्रेम करता है ?

यही दशा शरीर की भी है। महात्मा कहते हैं कि शरीर महा अपवित्र वस्तु है। महात्मा वैराग्य को अधिक पसन्द करते हैं। वैराग्य कहता है कि शरीर कफ, पित्त, मल और मूत्र का घर है; इससे घृणा करनी चाहिए। जब महात्मा शरीर से घृणा करते हैं तो वे ऐसे शरीर में कब तक ठहर सकते हैं या शरीर ही उनको अपने पास कब तक रक्खेगा ? आपको जिस मकान से घृणा है जिसे आप पापपूर्ण और अपवित्र समझते हैं उसमें आप अधिक

दिन तक नहीं ठहर सकते। इस सिद्धान्त का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। इससे महात्मागण अति शीघ्र शरीर से पृथक हो जाते या शरीर ही उनके इस मन्तव्य के कारण द्वेष वश उनसे पृथक् हो जाता है।

महात्माओं का कहना है कि शरीर रोग का घर है। शरीर पाप की जड़ और अधर्म का कारण है। शरीर सारे अनर्थों का मूल और महा अपवित्र है। शरीर महाविकारवान् और नश्वर है। बस महात्मागण इन्हीं पूर्वोक्त विचारों मे निमग्न रहते हैं। जो हर वक्त इसी विचार में मग्न रहता है उसके लिए शरीर एक आफ़त ही है। ऐसा मनुष्य जबतक शरीर के साथ है उसी का आश्चर्य्य है, शरीर का शीघ्र छोड़ देना कोई आश्चर्य्य नहीं।

महात्मा लोग शरीर और संसार को बन्धन समझते हैं। वे रात दिन इन बन्धनों से अलग होकर मुक्ति होने का यत्न करते हैं। वे इसी लिए योग, तप और ध्यान करते हैं जिसमें शीघ्र मुक्त हो जायं। भावना का प्रभाव कौन नहीं मानता? भावना की बड़ी महिमा है। इस भावना का फल यह होता है कि महात्मा लोग अति शीघ्र शरीर से मुक्त हो जाते हैं।

महात्मओं का सर्वोच्च सिद्धान्त यह है कि आत्मा अलग है और शरीर अलग। शरीर से आत्मा को पृथक् मानना ही महात्माओंकी दृष्टि में बहुत बड़ा ज्ञान है। इसी को महात्मा सत् और

असत् का विवेक कहते हैं। शरीर न आत्मा हो सकता न आत्मा शरीर। शरीर जड़ है और आत्मा चेतन। शरीर सत् है और आत्मा असत्। अतः शरीर और आत्मा दोनों एक दूसरे से विरुद्ध धर्म वाले हैं और अलग २ हैं। महात्माओं की दृष्टि में इन दोनों को एक समझना महापाप है। इनको अलग २ समझने का फल यह होता है कि ये सचमुच अलग हो जाते हैं और बहुत जल्द अलग हो जाते हैं। शरीर और आत्मा का अलग हो जाना ही मृत्यु है। अब सोचना यह है कि क्या यह सिद्धान्त निर्भ्रान्त और सत्य है अथवा इसमें कोई भूल है। हमारी समझ में तो इस सिद्धान्त में बहुत बड़ी भूल है।

द्वापर के इधर के कुछ महात्माओं का ऐसा सिद्धांत रहा है। पर इसके पूर्व के महात्माओं का भी यही सिद्धांत रहा यह नहीं मालूम होता। कारण यह है कि बहुत प्राचीन काल के महात्मा थोड़ी आयु के नहीं होते थे, किन्तु बहुत प्राचीन कालके महात्माओं की बहुत बड़ी आयु हुई है। यही नहीं किन्तु बहुत से महात्मा तो अमर भी माने जाते हैं। अच्छा तो इन लोगों के दीर्घायु और अमर होने का कारण क्या है? हम कहते हैं कि इसका उत्तर बहुत सरल है। यदि पूर्वोक्त सिद्धान्त अकाल मृत्यु के कारण हैं तो उनके विरोधी सिद्धान्त दीर्घायु या अमर होने के कारण होंगे।

विचार करने पर वेदान्त के सिद्धान्त से यह नहीं मालूम होता कि शरीर पृथक् है और आत्मा पृथक्। वेदान्त का मुख्य सिद्धान्त

यह है कि "सर्वं खल्विदं ब्रह्म", सब कुछ ब्रह्म है। "नेहनानास्ति", इस संसारमें नानात्व नहीं है। "एकमेवाद्वितीयम्" एक ब्रह्म ही है; दूसरा कुछ नहीं और वह अद्वितीय है। "पुरुष एवदंसर्वं यद्भूतं यच्च-भाव्यम्"—जो कुछ हो चुका है या जो होने वाला है, सब ब्रह्म ही है। इन पूर्वोक्त वाक्योंसे स्पष्ट मालूम होता है कि वेदान्त वा ब्रह्म-ज्ञान द्वैत को स्वीकार नहीं करता। वह सबको ब्रह्म ही मानता है। ब्रह्म के सिवाय और कुछ है ही नहीं। यदि सब कुछ ब्रह्म ही है तो शरीर दूसरी वस्तु कैसे है? हम कहते हैं कि यदि सारा संसार ब्रह्म है और दूसरा कुछ नहीं तो शरीर उससे अलग कैसे है? ब्रह्म चेतन है और यही चेतन सब कुछ है तो शरीर जड कैसे है? क्या ब्रह्म जड़ है? यदि ब्रह्म जड़ नहीं है तो संसार और शरीर दोनों जड नहीं हैं। ब्रह्ममय जगत् चेतनमय है। जो चेतनमय है, वह जड कैसे है? चेतन ब्रह्म से उत्पन्न हुआ संसार जड़ कैसे हो सकता है। चेतन ब्रह्म यदि संसार में व्यापक है तो संसार जड कहां रहा? क्या जिसमें या जिस जगह चेतता व्यापक है वहीं या उसी जगह जडता भी रह सकती है? क्या किसी जगह जड़ता भी है; जहां चेतन ब्रह्म व्यापक नहीं है? यदि किसी जगह चेतन ब्रह्म नहीं है तो वह सर्व व्यापक कैसे है? जो सर्व व्यापक नहीं, वह क्या ब्रह्म अथवा ईश्वर हो सकता है? कभी नहीं।

अब, इस अवस्था में शरीर आत्मा से पृथक कैसे हो सकता है? यदि एक ही तत्व विद्यमान है तो शरीर अन्य और आत्मा अन्य

कैसे है ? वेदान्त के इस सिद्धांत से तो शरीर और आत्मा को पृथक् २ मानना ही अज्ञान मालूम होता है। वास्तवमें यही बात है। ब्रह्म ज्ञानी कहते हैं कि संसार या द्वैत है ही नहीं; द्वैत जो भासता है वह भ्रम से। अतः संसार वा शरीरसे आत्मा को पृथक् मानना भ्रम है। अच्छा यदि यह ज्ञान भ्रम है तो इसके अनुसार शरीरसे घृणा करना अथवा शरीर को शीघ्र छोड़ देना क्या उचित है ? इस सिद्धांत से यह मालूम होता है कि वेदन्त के विरुद्ध नानात्व का सिद्धांत ही मृत्यु का कारण है और अद्वैत का सिद्धांत अमृतत्व का। वेदमें कहा भी है कि वही मनुष्य मरता है जो इस संसार में नानात्व, अनेकत्व वा द्वैत को देखता है। "समृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ॥ १९॥ वृहदारण्य चतुर्थ ब्रा०

वेदान्त का वास्तविक सिद्धान्त ऐसा नहीं है, जिससे मृत्यु प्राप्त हो किन्तु वास्तविक तत्व ऐसा है कि उसे और इस पुस्तक के ज्ञान को जानकर मनुष्य अमृतत्व लाभ करता है। उपनिषद या वेदान्त कहता है:—

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्,
तथारसं नित्यमगन्धवच्चयत्,
अनाद्यनन्तं महतः परम ध्रुवम्,
निचाय्य तं मृत्युमुखात् प्रमुच्यते ॥

उस अनादि, अनन्त, अव्यय, अचल, और अटल परमात्मा को जानकर मनुष्य मृत्यु के मुख से छूट जाता है इस श्लोक का भावार्थ है ?

बहुत से महात्मा कहते हैं कि, "इस शरीर के छूटने के बाद आत्मा अमर हो जाता है; शरीर से कोई अमर नहीं हो सकता"। हम पूछते हैं कि मृत्यु शरीर की होती है वा आत्मा की ? यदि मृत्यु शरीर की होती है तो शरीर छूट जाने के बाद केवल आत्मा के लिए यह कहना कि "वह मृत्यु के मुखसे छूट जाता है" कैसे होगा ? जो मरता है, वह रहा ही नहीं। आत्मा अमर है तो केवल उसके लिए मृत्यु के मुखसे छूटना क्यों कहा जायगा ? फिर हमारा दूसरा प्रश्न यह है कि ऊपर वाला वेदका उपदेश शरीरधारियों के लिए है वा जो शरीर छोड़ चुके हैं उन आत्माओं के लिए ? यदि शरीर धारियों के लिए है तो, जो मृत्यु आने वाली है—जिससे सारे शरीरधारी भयभीत हो रहे हैं—वह मृत्यु इस शरीर की होगी वा उसके आत्मा की ? यदि शरीर की है और इसी शरीर की मृत्यु से लोग भयभीत हैं तो "उस ईश्वर को जानकर मृत्यु के मुखसे छूट जाता है" इस वचन को हम आत्माके लिए कैसे समझ सकते हैं। यदि उसका जानने वाला मृत्यु के मुख में चला ही जायगा तो वेदका यह उपदेश निरर्थक और असत्य मालूम होता है। एक शरीरधारी इसे पढ़ रहा है—"उसे जानकर मनुष्य मृत्यु के मुखसे छूट जाता है" इसका अर्थ पढ़ने वाला तो यही समझेगा कि इसी आनेवाली मृत्यु से हम बच जायँगे। एक बार मरजाने के बाद आत्मा को जन्म का भय रहेगा मृत्यु का नहीं। जन्म के बाद मृत्यु और मृत्यु के बाद जन्म होता है मृत्यु नहीं। अतः यह कहना कि वेद के इस

वचन का मतलब यह है कि यह संसारिक शरीर इस बार छूटेगा, एकबार मृत्यु होगी, किन्तु मरनेके बाद मृत्यु के मुखसे छूट जायगा। यह सिद्धान्त बिलकुल निस्सार और व्यर्थ है। मरने के बाद फिर कौनसे मृत्यु के मुखसे छूटेगा ? मरने के बाद फिर मृत्यु तो होगी नहीं; अधिक से अधिक आत्माकी मुक्ति न होने पर उसका जन्म होगा मृत्यु नहीं। यदि यहां इस वेद वचन में यह कहा गया होता कि मरने के बाद ईश्वर का ज्ञानी जन्म के मुखसे छूट जायगा तब अलबत्ता पूर्व पक्ष का सिद्धान्त ठीक होता। वेदने स्पष्ट कह दिया है—"मृत्यु के मुखसे छूट जाता है"। जन्म को मृत्यु नहीं कह सकते। जन्म लेनेपर फिर इसी शरीर ही की मृत्यु हो सकती है। अतः वेदका उपदेश इसी आने वाली मृत्यु से बचने के लिए है और वेद के उपदेशों से यह साफ प्रकट होता है कि मनुष्य ब्रह्म को जानकर आने वाली मृत्यु से बच सकता है।

अतः हमारे कथनानुसार ब्रह्मज्ञान इस लिए है कि मनुष्य से मृत्यु छूट जाय न कि वह बहुत जल्द मर जाय। जो मनुष्य ब्रह्म को सचमुच तत्व से जान लेगा वह अवश्य मृत्यु से छूट जायगा। इसके लिए वेदों और उपनिषदों में केवल एक दो मन्त्र नहीं हैं किन्तु सैकड़ों भरे पड़े हैं। नीचे कुछ मन्त्र और दिए जाते हैं इनके अर्थों पर भी विचार किजिए।

तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः
पन्था विद्यतेऽयनाय।

य एदैक रुद्रमवे सम्भदे च
यएतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारमीशं
तंज्ञात्वामृता भवन्ति ॥
य एद्विदुरमृतास्तेभवन्त्यथेतरे
दुःखमेवापि यान्ति ॥
न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः
प्राप्तस्य योगाग्निमय शरीरम् ॥

इन सबका अर्थ नहीं लिखते हैं। सबका भावार्थ यही है कि उस परमात्मा को जान कर मनुष्य मृत्यु को जीत लेता और अमर हो जाता है। हां इसमें एक मन्त्र ऐसा है जिससे यह प्रकट होता है कि जब यह शरीर योग की अग्नि से शुद्ध हो जाता है तो उसका बुढ़ापा, रोग और मृत्यु दूर हो जाती है। आप कहेंगे कि योग द्वारा यह बात सम्भव हो सकती है नहीं तो यह असम्भव ही है। अच्छा, तो यही सोचिए कि यह योग द्वारा कैसे सम्भव हो सकती है? क्या योग की महिमा ब्रह्म या आत्मा से भी बढ़कर है? योग की यदि कुछ महिमा है तो वह सच्चिदानन्द आत्मा की ही बदौलत। योग करने से ब्रह्म का या आत्मा का साक्षात्कार होता है—ईश्वर का सच्चा ज्ञान प्राप्त होता है। अतः योग का फल भी आत्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान ही है। योग द्वारा समाधि में पहुंचकर मनुष्य सच्चा ज्ञान प्राप्त कर लेता है और अमर हो जाता है। वेद

योगपर "योगसाधन" नाम की पुस्तक भी हमने लिखी है। मूल्य २॥) ढाई रुपया। मैनेजर ज्ञानशक्ति प्रेस,गोरखपुरको लिखनेसे पुस्तक मिलेगी।

कहता है कि ब्रह्म को जानकर मनुष्य अमर हो जाता है। अतः ब्रह्म का सच्चा ज्ञानी वही है जो अमर हो गया है या मृत्यु उसके वश में हो गई है। सच्चा ज्ञान है भी वही—जिससे मृत्यु जीती जा सकती है।

इस लेख को पढ़कर सौ में निन्नानवे कहेंगे कि शरीर से अमर होना असम्भव है; यह नहीं हो सकता। आज कल जितने मजहब या सम्प्रदाय हैं सबका यही मत है। पर वास्तव में यदि विचार करके देखा जाय तो तमाम मजहब और सम्प्रदाय के भीतर कुछ लोगों को अमर माना जाता है। मजहबी कितावों में बहुत से पुराने लोगों की इतनी बड़ी आयु मानी गई है कि लोगों को सुन कर आश्चर्य होता है। अच्छा यदि यह वात असम्भव ही मानी जाती है तो धार्मिक संसार वहुतों को अमर क्यों मानता है? यदि कुछ ईश्वर के भक्त, नवी, औलिया, फरिश्ते, पैगम्बर, ऋषि, मुनि और देवता ईश्वर की भक्ति या ज्ञान से अमर हो गए तो आप भी यत्न करके हो सकते हैं। आप न भी हों माना, पर आपके न होने से यह वात असम्भव कैसे हो सकती है? हमारे हिन्दुओं में तो मृत्युञ्जय नामका एक वेद मंत्र ही प्रसिद्ध है। यह मृत्युञ्जय मन्त्र यजुर्वेद में है। वह मन्त्र यह है:—

"त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव वन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥"

इस मन्त्रका भी वही अर्थ है। "हम उस त्र्यम्बक शिव परमात्मा की उपासना करते हैं। वह परमात्मा हमें उर्वारुक फल की तरह मृत्यु के बन्धन से छुड़ाकर अमृतत्व से न छुड़ावे"। पुराणों के अनुसार इसका जप करने से बहुत से लोग अमर हो गए हैं।

ऊपर की बातों के लिखने का यह मतलब नहीं है कि पुराणों, वेदों, उपनिषदों या प्राचीन ऋषियोंके कहने से ही हम यह बात मानते हैं। अलबत्ता जो लोग प्राचीनता के बहुत बड़े भक्त हैं उन्हीं लोगों के लिए इसे लिख दिया है। हम किसी सिद्धान्त को पुराने होने के कारण ही नहीं मान लेते। बुद्धि और ज्ञान जो था वह पुराने ही लोगों के पास था यह हमारा मन्तव्य नहीं है।

हम जो कुछ कहेंगे उसे युक्ति और प्रमाणके साथ कहेंगे, मानना न मानना आपके अधीन में है। यह ज्ञान तो ऐसा है कि यदि इस विषय में किसी को कुछ मालूम है तो वह किसी को बतलाता ही नहीं मनवाने की बात अलग रही।

हमें इस लेख में विशेष कर इसी पर विचार करना था कि बड़े बड़े महात्मा शीघ्र क्यों मरे? इसका कारण हमने दिखला दिया। जिस ज्ञान से ऐसा होता चला आया है उसे भी दिखला दिया, वह ज्ञान ठीक नहीं। हम उसी ब्रह्मज्ञान ही से साबित करते हैं कि वह ज्ञान ठीक नहीं है। महात्माओं का पूर्वोक्त सिद्धान्त देखने में तो वेदान्त का सा है पर है वेदान्त के विरुद्ध। महात्माओं का सिद्धान्त

है कि यह शरीर जड है, इस भावना का यह फल होता है कि उनका शरीर अति शीघ्र जड हो जाता है।

सारा संसार दुःख मूल है, विकारवान् है अथवा जड है—यह मन्तव्य वेदान्त का नहीं हो सकता। जिस मनुष्य के चारों तरफ जड ही जड है उसका शरीर यदि शीघ्र जड़ हो जाय तो क्या आश्चर्य्य? वेदान्त कहता है कि यह सारा संसार ब्रह्म स्वरूप है—सब ब्रह्म ही है (सर्वं खल्विदं ब्रह्म)। यदि सारा संसार ब्रह्म, अनन्त अविनाशी और आनन्दमय, निर्विकार तथा चेतन है तो संसार जड और विकारवान् और दुःखकी जड कैसे हो सकता है? वेदान्त के अनुसार संसार और ब्रह्म में कुछ भेद नहीं है। भेद भ्रम से होता है। भेद ज्ञानको ही अज्ञान कहते हैं। इसी तरह शरीर भी घृणा करने योग्य नहीं है। घृणामें अज्ञान, और प्रेममें ज्ञान रहता है। आप यदि द्वैतवादी हैं-आप यदि वेदान्त के इन सिद्धान्तों को नहीं मानते-तब भी आप संसारसे घृणा नहीं कर सकते। आप चाहे संसार और ईश्वर को एक न मानें पर ईश्वर को संसारका कर्त्ता और संसार में व्यापक तो अवश्य मानते होंगे। अच्छा क्या वह पवित्र और निर्विकार ईश्वर, ऐसी चीज को बना सकता है जिससे उनके भक्त घृणा करें? क्या ईश्वर की बनाई हुई चीज पापपूर्ण और घृणा करने योग्य हो सकती है? क्या जो सर्वशक्तिमान् और आनन्द स्वरूप है उसकी बनाई हुई सृष्टि दुःखों की जड हो

सकती है ? कभी नहीं। जिस शरीर में सच्चिदानन्द व्यापक है वहां दुःख कहां ? तुम्हारी अज्ञानता से—तुम्हारी बुद्धि के भ्रम से—तुम्हारी समझ के फेरसे, इस शरीर या संसार में तुम्हें दुःख मालूम होता है। दुःख की कल्पना तुमने स्वयं करली है। यह दुःख तुम्हारी कल्पना और भावना का फल है—वास्तव में यहां आनन्द ही आनन्द है।

स्वर्ग और वैकुण्ठ के लिए लोग संसार छोड़ देना चाहते हैं—उधार पर नकद को लात मारते हैं—आशा पर प्राप्त वस्तु का तिरस्कार करते हैं—कितनी बड़ी भूल है ? संसार को तो हम तुम देख रहे हैं—वैकुण्ठ को किसने देखा है ? तुम कहते हो—वैकुण्ठ और स्वर्गमें सच्चिदानन्द विष्णुका निवास है, वहां आनन्द ही आनन्द है। इस बातको हम थोड़ी देरके लिए मान भी लेते हैं। इसका खण्डन नहीं करते। पर हम पूंछते यह हैं कि इस संसारमें क्या उस सच्चिदानन्द विष्णु का निवास नहीं है ? क्या यहां विष्णु जी कम रहते हैं और वैकुण्ठमें विशेष ? यदि यह बात सत्य है तो वही विष्णु सर्व व्यापक अखण्ड और अनन्त कैसे कहलावेंगे। जो सर्व व्यापक अखण्ड और अनन्त नहीं है वह ईश्वर कैसे हो सकता है ? भक्त लोग कहते हैं कि उनका वहां साकार रूप है। हम कहते हैं कि क्या यहां पर वह साकाररूप धारणकर हजारों बार नहीं आया है ? क्या यहां की भूमिको—वृन्दावन और अयोध्याको—उसने वैकुण्ठ से अधिक

नहीं कहा है ? तुम कहोगे ईश्वर यहां पर जब रहा तब रहा अब तो वैकुण्ठमें ही है। हम कहते हैं कि जब वह वृन्दावन और अयोध्यामें था तो क्या उस समय वहांके लोगोंने उसे पहचान लिया था। इतिहास और पुराण कहते हैं कि लाखों ने नहीं पहचाना था। आश्चर्य क्या कि वह इस समय भी हो और तुम पहचानते ही न हो। बात यही है। क्या उसका यह वचन नहीं है कि जब २ धर्म की हानि होती है तब तब हम अवतार लेते हैं ? क्या इसे आप भूल गए हैं ? यदि स्मरण है तो क्या इस कलियुग में सत्ययुग त्रेता और द्वापरसे कम अधर्म है। यदि कलियुग में उन युगों से अधिक अधर्म है तो उसका अवतार क्यों नहीं हुआ होगा ? उसकी प्रतिज्ञा असत्य नहीं हो सकती। इस वक्त भी वह संसार में तुम लोगों के बीच में वर्त्त-मान है। श्रीयुत तुलसीदासजीने कहा है:—

"सियाराम मय सब जग जानी।
करहुं प्रणाम जोरि युग पानी" ॥१॥

बस, यही संसार स्वर्ग और वैकुण्ठ है। वह ब्रज भूमि जो श्री कृष्ण के रहने की जगह थी वह संसार ही है। ब्रजगमने--इस धातु से ब्रज शब्द बना है। जगत् भी गम धातु से बना है। संस्कृत में जो अर्थ ब्रज का है वही अर्थ जगत् का है। अतः इसे आप पक्का समझ लें कि जिसे संसार में स्वर्ग और वैकुण्ठ नहीं मिला उसे दूसरी जगह नहीं मिलेगा। बहुत से लोग कहते हैं कि विश्वास

फलदायक होता है । जो वहां वैकुण्ठ नहीं मानता उसके लिए वहां वैकुण्ठ नहीं है । हम कहते हैं कि यदि विश्वास ही फलदायक होता तो यहो क्यों नहीं विश्वास करते कि यही संसार ही वैकुण्ठ और स्वर्ग है ।

चाहे कुछ हो सच्ची बातका प्रभाव सबपर कुछ न कुछ रहता है । यही कारण है कि साधारण लोग सचमुच हृदय से इस संसार को छोड़कर वैकुण्ठ या स्वर्ग में जाना नहीं चाहते । फिर भी मृत्यु की, परलोक की, या वैकुण्ठ की, भावना इतनी कड़ी हो रही है कि लोग मृत्यु को जीतना या अमर होना असम्भव समझते हैं । बस यह समझना ही और मनुष्यों की यह भावना ही मृत्यु का कारण है । कथा सुनते हैं महात्माओं के पास जाते हैं, जहां जाते हैं वहीं, यही सुनने में आता है कि तुम्हें एक न एक दिन अवश्य जाना होगा काल सबके ऊपर है । हम कहते हैं क्या यह काल ईश्वर के भी ऊपर है ? वेद कहता है—

अयमात्मा ब्रह्म सोयमात्मा चतुष्पात्

"यह आत्मा ब्रह्म है; वही आत्मा ब्रह्म है जो जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति और तुरीय चार अवस्था वाला है । चार अवस्था वाला यही जीव है अतः यही ब्रह्म है । वेदान्त कहता है कि यह ज्ञान होते ही मनुष्य ब्रह्म हो जाता है और जब हो जाता है तो पूर्ण रूपसे हो जाता है । हो क्या जाता है, वेदान्त कहता है कि यह जीव ब्रह्म

है ब्रह्म था और ब्रह्म ही रहेगा। तुम ब्रह्म से भिन्न नहीं हो। तुम पूर्णरूप हो, अतः काल तुम्हारे ऊपर नहीं; तुम काल के ऊपर हो। मृत्यु तुम्हारे वशमें है; तुम मृत्यु के वशमें नहीं। पर रात दिन सब को मरते देखकर--सब से यही बात सुनकर—लोगों को यह विश्वास हो गया है कि मृत्यु को जीतना कठिन है। यही विश्वास और समझ मृत्यु का कारण है। इसको चित्त से निकाल दो और अमर हो जाओ।

स्वतन्त्र विचार द्वारा
अमृतत्व का लाभ ।

विश्वास में बड़ा बल है। विश्वास द्वारा सब कुछ हो सकता है। इन बातों को संसार के सभी लोग स्वीकार करेंगे। पर यहीं यदि हम यह कहें कि विश्वास द्वारा मनुष्य अमर हो सकता है तो इसे कोई नहीं मानेगा। यद्यपि यह बात यथार्थ और सत्य है। न मानने का कारण क्या है? इसलिए कि इसे बड़े २ लोगों ने नहीं माना है; हमारे प्राचीन ऋषियों और मुनियों ने इसे नहीं लिखा है। वर्तमान् मनुष्यों की बुद्धि सर्वदा पीछे की ओर देखती और आगे बढ़ने से रुक जाती है। सच्ची बात तो यह है कि मनुष्य आगे बढ़ने के लिए है। पर वह मनुष्य आगे नहीं बढ़ सकता जो अपनी बुद्धि से विचार कर, अपनी आंखोंसे देखते हुए, अपने पैरों से नहीं चलना चाहता।

लोग प्रायः एक दूसरे से पूछा करते हैं कि तुम किसके अनुयायी हो। अनुयायी कहते हैं पीछे चलने वाले को। मनुष्यकी बुद्धि में आगे चलना पाप है। हम अपनी आंखों और अपनी बुद्धि से काम लेना नहीं चाहते। हम लोग यह नहीं सोचते कि जैसे ईश्वर ने ब्रह्मा,

व्यास, बुद्ध, ईसा और मुहम्मद साहब को दो आंखें और बुद्धि देकर संसार में भेजा था उसी तरह हमें भी दो आंखें और बुद्धि देकर भेजा है। यदि वह जानता कि हमारा काम महात्मा ईसा की आंखों और हज़रत मुहम्मद की बुद्धि से चला जायगा तो उसे हमारे लिए अलग दो आंखें देने की जरूरत न थी। पर नहीं उसने उन्हीं लोगों के समान हमें भी दो आंखें दी हैं। अतः हमें उनसे स्वतन्त्र रूप में काम लेना चाहिए।

यह हम भी मानते हैं कि आप की बुद्धि इतनी तेज़ नहीं है जितनी व्यास की थी। पर इसका कारण यही है कि आप अपनी बुद्धि से उतना स्वतन्त्र रूप में काम नहीं लेते जितना कि व्यासने अपनी बुद्धिसे लिया था। साधारण मनुष्यों से कसरत करने वाला एक पहलवान क्यों अधिक पुष्ट होता है? इसका उत्तर बहुत साफ है। उसने अपने शरीर से साधारण मनुष्योंकी अपेक्षा अधिक काम लिया है। हमारा दाहिना हाथ वायें हाथ से अधिक पुष्ट क्यों है? इसी लिए कि हमने अपने दाहिने हाथ से वायें हाथ को अपेक्षा अधिक काम लिया है। बस यही दशा बुद्धिकी भी है। आप अपनी बुद्धि से इसलिए काम लेना नहीं चाहते कि आपकी बुद्धि उतनी बलवती नहीं है। पर आप यह नहीं सोचते कि जबतक हम उससे स्वतन्त्र रूपमें काम नहीं लेंगे तबतक वह बलवती हो भी नहीं सकती। हां, यह सम्भव है कि पहले आपकी बुद्धि स्वतन्त्र रूप में चलने से

कुछ भूल करे वा लटपटा कर गिर पड़े। पर क्या यह ठीक नहीं है कि जो गिरता है वही पुष्ट होता है। वह मनुष्य कभी बलवान् नहीं हो सकता जो गिरने के डरसे अखाड़े में ही नहीं उतरता।

इस बात की भावना छोड़ दिजिए कि पुराने लोगों पर ईश्वर की विशेष कृपा रही। आप अपनी बुद्धि को स्वतन्त्र करके उससे स्वतन्त्र रूपमें काम लीजिए। फिर देखिए कि, आपकी बुद्धि क्या नहीं कर सकती। आप स्वयम् अपने बुद्धि बल को देखकर चकित होंगे। आपने यह सोच रक्खा है कि हमारी बुद्धि अमुक ऋषि के विचारों से अच्छी नहीं हो सकती हम मूर्ख, निर्बल और मर्त्य हैं। बस, अपने विश्वासानुसार आप सचमुच मूर्ख निर्बल और आयु हीन होते जाते हैं।

वही वृक्ष फलता, फूलता, फैलता और हरा भरा रहता है जो खूब खुले मैदानमें रहता और स्वतन्त्र रूप में स्वच्छ वायु और प्रकाश को ग्रहण कर सकता है। वह पौदे जो किसी बड़े वृक्ष के छाये में पड़ जाते हैं-जिन्हें स्वतन्त्र रूपमें प्रकाश और हवा नहीं मिलती-वह कितने पीले निर्बल और कमजोर होते हैं? ऐसे वृक्ष न फलते हैं, न फूलते हैं और न बढते हैं। ऐसे वृक्षों और मनुष्यों का जीवन निराशा और मृत्यु से घिरी रहती है।

किसी के अनुयायी मत बनो। किसी का अन्ध भक्त बनने की आवश्यकता नहीं है। जो काम आज तक नहीं हुआ वह कभी

नहीं हो सकेगा इस भावना को छोड़ दो। यदि राम और कृष्ण अमर नहीं हुए तो हम भी नहीं हो सकते यह व्यर्थ की भावना है। इसी भावना के भीतर मृत्यु छिपी हुई है। इसी भावना से आजतक मृत्यु का विजय होता आया है। इसको हृदय से निकाल दो और अमर हो जाओ।

वह मनुष्य धन्य है जिसकी बुद्धि किसी बाबा जी के हाथ बिकी नहीं है। संसार में ऐसे ही लोग अधिक हैं। जो अपनी बुद्धि को किसी सम्प्रदाय, मत वा मजहब में बांध चुके हैं। ऐसी बुद्धि साम्प्रदायिक चक्रों और मजहबी दायरों से निकल कर आगे नहीं बढ़ सकती। सच्ची बात तो यह है कि हमारी उन्नति को साम्प्रदायिक खड़हरों और पुराने विचारों की भद्दी दीवारों ने इस तौर पर रोक रक्खा है कि इसके बाहर जाकर अमृतत्व का स्वच्छ वायु लेना कठिन हो गया है। बड़ी कठिनता है। हमारी बुद्धि बढ़ना चाहती है, फैलना चाहती है और स्वच्छ वायु के लिए आगे बढ़ना चाहती है पर पुराने विचारों की खाई उसे आगे बढ़ने से रोक देती है। इस खाई को किसी मजहबके नेता या पैगम्बर ने नहीं बनाया है; इसे हमने स्वयम् बना रक्खा है। हम चाहें तो ५ मिनट में इसके पार जा सकते हैं।

साधारणतः मनुष्य साधारण संसार या विचार से आगे नहीं बढ़ना चाहता; वह अपनी पुरानी दशामें पड़ा रहता है। कभी २

यदि कोई उन्नतिशील जीव उच्च विचारों को लेकर ऊपर को बढता है तो वहां पर जनता को न देखकर डर जाता और लौट आता है। जैसे महान पुरुषों या राजराजेश्वर सम्राट् को देखकर मनुष्य डर जाता है उसी तरह इस अमृतत्व के विचार के पास वा किसी उच्च विचार के पास जाने से मनुष्य डरजाता और इसकी तरफ आगे बढते हुए ठिठकता है। मनुष्य सोचता है कि, क्या, हमारे ऐसा आदमी अमर हो जायगा, क्या सचमुच हमें इस ज्ञान द्वारा यह अलभ्य लाभ होगा जो राम और कृष्ण को नहीं हुआ? कभी नहीं। अभी हम इस योग्य नहीं। जैसे अत्यन्त उज्ज्वल प्रकाश को देखकर आखें चकमका जाती हैं उसी तरह कुछ मनुष्य अत्यन्त उच्च ज्ञान से घबड़ा कर भाग जाते हैं और ऊपर उड़ने की हिम्मत नहीं करते। उच्च ज्ञान की पवित्रता, महानता और चमक छोटे हृदय को अपने पास नहीं आने देती। मनुष्य अपने से अपने को दीन, हीन और मर्त्य मानकर सचमुच दीन होकर मृत्यु के फन्दे में पड़ा हुआ है। विश्वास भावना और इच्छा-शक्ति के अपार बलको स्वीकार करता हुआ भी मनुष्य अपने हृदय की दुर्बलता के कारण उससे बड़े से बड़ा काम लेना नहीं चाहता।

प्रत्येक मनुष्य अपने से बहुत बड़े जीव को अमर मानता है। शिव विष्णु, कागभुसुण्डि, गोरक्षनाथ, अश्वत्थामा, मार्कण्डेय, लोमस ऋषि और भरतृहरि आदि अमर माने जाते हैं। यह मानता हुआ भी मनुष्य अपने को इतना तुच्छ समझता है कि वही उच्च ज्ञान

पाजाने पर भी वह अपने को अमर कहते हुए कांप उठता है। बस, यही विचार और भाव मृत्यु का कारण है।

"यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी"।

"विश्वासो फलदायकः"। मनुष्य का जैसा विश्वास होता है वही हो जाता है। ऐसे वाक्य प्रायः सभी कहा करते हैं। इस पर सबका विश्वास है। पर हम यह कहते हैं कि यदि यह ठीक है कि जैसा विश्वास होता है मनुष्य वही हो जाता है तो मनुष्य यदि विश्वास करे कि हम ईश्वर हो जांय तो वह अवश्य ईश्वर हो जायगा। यद्यपि यह सर्वथा सत्य है पर बहुत से लोग इसे नहीं मानेंगे। क्योंकि उनकी बुद्धि इस महान् और उच्चकक्षा के विचार को सुनकर चकरा जाती है। पर वेदान्ती और विचारवान् लोग इसे उसी वक्त मान लेंगे और कहेंगे कि हम ईश्वर हो जांयगे नहीं, हम तो ईश्वर हैं ही। पर इनसे भी यदि हम यह कहें कि यदि हम ईश्वर हैं तो क्या हम अपनी इच्छा से अमर नहीं हो सकते तो यह भी इस बड़ी बात को सुनकर दब जायंगे। कहते हैं कि आत्मा अमर है शरीर नहीं। पर साथ ही यह भी कहते हैं कि ईश्वर जो चाहे सो कर सकता है। तो क्या, यदि ईश्वर शरीर से अमर होना चाहे तो नहीं हो सकता? अवश्य हो सकता है। सब कुछ ब्रह्म है तो शरीर भी दूसरा नहीं है। शरीर भी ब्रह्म है। शरीर तो मनसे उत्पन्न हुआ मनोमय है। उसपर हमारी इच्छा का

पूर्ण अधिकार है। यदि हमारा दृढ़ विश्वास है कि हमारा शरीर अमर है तो उसका नाश होना सर्वथा असम्भव है।

मनुष्य उसी पर विश्वास करता है जिसे उसकी बुद्धि बतलाती है कि यह सत्य है। अतः ज्यों २ बुद्धि उन्नति करती है त्यों २ विश्वास भी उन्नति करता है। इसी तरह जैसे २ विश्वास बदलता जाता है वैसे २ शरीर के प्रत्येक अणु बदलते जाते हैं। अतः यदि बुद्धि और विचार की उन्नति द्वारा हमें दृढ़ विश्वास हो जाय कि हम अमर हैं तो हमारे शरीर के तमाम परमाणु बदल कर नाशमान् से अविनाशी हो जायंगे या ऐसे हो जायंगे जिससे फिर कभी उनका नाश नहीं हो सकेगा।

शरीर के प्रत्येक परमाणु बदलते रहते हैं, और उनकी जगह पर नये आते रहते हैं। इस ज्ञान द्वारा शरीर के अमर होनेपर भी परमाणु बदलते रहेंगे और बराबर नये परमाणु जो प्रवेश करेंगे वह पहिले से अधिक सजीव, शक्तिशाली, नीरोग और उन्नत होंगे। इनमें अपने से भी अधिक सजीव परमाणु खींचने की शक्ति रहेगी और इस क्रम का कभी नाश न होगा और हमारा यह शरीर सर्वदा बना रहेगा।

परिवर्त्तन और रूपान्तर के साथ अमृतत्व का अस्तित्व।

यह सबको मालूम है कि शरीरके तमाम परमाणु धीरे २ बदलते रहते हैं। मतलब यह है कि कुछ परमाणु नित्य शरीर से बाहर चले जाते और उनकी जगह नित्य दूसरे नये परमाणु भोजन, पानी और श्वास के रास्ते भीतर आ जाते हैं। कुछ पुराने परमाणुओं के निकल जाने से ही भूख लगती है। भोजन की सहायता से शरीर फिर उन खाली जगहों को भर लेता है। इस तौर पर नित्य प्रस्वेद, मलमूत्र तथा श्वास के रास्ते पुराने परमाणु निकलते रहते हैं। यहां तक कि ७ वर्षों में पुराने परमाणु निकल जाते और उनकी जगह नवीन आ जाते हैं। इसको यों समझ लीजिए कि सात वर्षों में प्रत्येक शरीर की कायापलट हो जाती है। या यह समझ लीजिये कि आजका शरीर सात वर्षों के बाद नहीं रह जाता। सात वर्षके पहले हमारे शरीरमें जो परमाणु थे अथवा जो मांस, रक्त, चर्म और अस्थि थी वह अब नहीं हैं। पर आश्चर्य्य यह है कि शरीर के रूप रंग में फरक नहीं पड़ता। बिलकुल फरक नहीं पड़ा ऐसा भी नहीं कह सकते; कुछ जरूर पड़ा है। बहुतों के शरीर में तो बहुत बड़ा फरक पड़ जाता है। यह सब विश्वास और भावना का खेल है।

ज्यों २ शरीर के परमाणु बाहर जाते हैं त्यों २ हमारी भावना के अनुसार दूसरे परमाणु बाहर से आकर उनकी जगह उन्हीं का रूप धारण करके बस जाते हैं।

जिस भोजन को एक गोरा आदमी खाता है उसी को काला भी खाता है। पर गोरे के शरीर में जाकर वह गोरा और काले के शरीर में जाकर काला हो जाता है। तात्पर्य्य यह है कि भोजन एक ही होने पर भी भिन्न २ शरीर के भीतर जाकर भिन्न २ रूप धारण करता है। इसका कारण क्या है ? इसका कारण है भिन्न २ शरीर के भीतर का भिन्न २ विचार, भाव, कल्पना, मन और विश्वास। रामप्रसाद का विचार और विश्वास, कृष्णप्रसाद के विचार और विश्वास से भिन्न है। इसी लिए दोनों का एक ही प्रकार का भोजन होने पर भी भीतर जाकर वही एकही भोजन दो प्रकार का रूप धारण करता है।

पूर्वोक्त बातोंपर विचार करने से यह स्पष्ट प्रकट है कि बाहर के परमाणु जो भोजन, पान और स्वास के रास्ते भीतर आते हैं वे वैसाही रूप धारण करते हैं जैसा हमारा विचार,मन, कल्पना और विश्वास होता है। इस नवीन ज्ञानसे पाठकोंका विचार बदल जायगा और विचारों के बदलतेही शरीर में भी परिवर्तन होने लगता है। विचार, कल्पना और भावना व्यर्थ की बात नहीं हैं। यह अवस्तु नहीं वस्तु हैं। यह स्वयम् निराकार हैं पर संसार के सारे साकार पदार्थ इन्हीं के बनाए हुए हैं।

हमारा इस जन्म का शरीर हमारे अनेक जन्मके विचारों और कल्पनाओंका एक साकारसमूह है, हमारा शरीर हमारे विचारोंऔर कल्पनाओं का प्रत्यक्ष रूप है। मनुष्य के शरीर को देखकर विचार-शील मनुष्य मनुष्य के भावों, विचारों और कल्पनाओं का बहुत कुछ पता लगा सकता है। किसी के विश्वास, विचार और भीतरी भावों, तथा, उनके वाहरी शरीर में भेद केवल इतना ही है कि एक अदृश्य है दूसरा दृश्य, एक साकार है दूसरा निराकार, एक प्रत्यक्ष है दूसरा दृष्टि से परे है। बस, इसके सिवा, हमारे शरीर और हमारे विश्वास तथा विचार में कुछ भेद नहीं है। यदि हम इस विद्या के गूढ़ तत्वों पर विचार करें तो हम केवल शरीर को देखकर मनुष्य के भीतरी विचारों और भावोंको भी बहुत कुछ जान सकते हैं। केवल इसके लिए कुछ दिनों तक अभ्यास और साधन करने की आवश्यकता है।

इन वातों पर विचार करने से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि हमारे भोजन, पान और श्वास के रास्ते जो परमाणु आवश्यकता के अनुसार भीतर जाते हैं वे वही रूप धारण करते हैं जैसा कि हमारा विश्वास, विचार, कल्पना और मन होता है। अतः यह सिद्ध है कि हमारा जैसा विश्वास होगा धीरे २ हमारे शरीर के सवके सव परमाणु वैसे ही हो जाएंगे और विल्कुल कायापल्ट हो जायगी। अतः इस सिद्धान्त के अनुसार यदि हम यह कहें कि कोई भी रोगी

विश्वास के साथ यदि नीरोग होने की भावना करे तो थोड़े दिनों के बाद वह सर्वथा (जन्म रोगी होने पर भी) नीरोग और निरामय हो जायगा तो इस सिद्धान्त को सभी विद्वान् मान लेंगे। पर, यहीं यदि हम यह कहें कि इसी तरह से यदि हम शरीर से ही अमर होने की भावना करें तो धीरे २ शरीर के भीतर ऐसेही परमाणु आजावेंगे जो शरीर को सर्वदा अमर और नीरोग रक्खेंगे तो कोई भी नहीं मानेगा यद्यपि इसमें और पहले की बात में रत्ती भर भी भेद नहीं है। यदि पहला हो सकता है तो यह दूसरा भी हो सकता है। अपनी आत्मा से पूछिए यह क्यों नहीं हो सकता ? वह कहेगी कि अवश्य हो सकता है। वह कहेगी कि साधन करने से, विश्वास के बल से सब कुछ हो सकता है। इतने पर भी आप कहते हैं कि हम अमर नहींहो सकते। इससे तो यही सिद्ध होता है कि आपमें आत्मबल की न्यूनता है और यही तुच्छ विचार मृत्युका कारण है। अपने को निर्बल मानना अच्छा नहीं है। कोई निर्बल नहीं है। आप विश्वास के साथ नित्य सवेरे उठकर भावना करें कि हमारे में वही परमाणु आरहे हैं जो हमारे शरीर को अमर बना देंगे। भावना कीजिए कि हम उन्हीं परमाणुओं को अपने श्वास के साथ बराबर खींचते आए और खींच रहे हैं जो हमारे शरीर को अमर बना देंगे, तो आपके विश्वास के अनुसार सचमुच वेही परमाणु अन्दर जा सकेंगे जो आपके शरीर को सचमुच अमर बना सकें।

परमाणु वदलते रहते हैं पर शरीर उसी तरह स्थित रहता है। यहां तक कि सात वर्ष के बाद पुराना शरीर ही वदल जाता है। मगर हमें मालूम नहीं होता। बात यह है कि यह सव नित्य धीरे २ होता रहता है। आजतक सबका यह विश्वास था कि मरना आवश्यक है। इसी से धीरे २ क्रमशः जो परमाणु बाहर से नये आते हैं वे पहले की अपेक्षा अधिक निर्जीव और निर्बल होते हैं। इस तरह से शरीर उत्तरोत्तर वृद्ध निर्बल और निर्जीव होता जाता है और अन्तमें एक दिन मर भी जाता है। लड़कपन में संसार का प्रभाव हमारे मन पर कम रहता है। यही कारण है कि पहले कुछ दिनों तक परमाणु उत्तरोत्तर बलवान् और सजीव आते जाते हैं। पर ज्यों २ यह मनुष्य अधिक उमर का होता है त्यों २ लोगों को बारम्बार मरते देखकर मरण की भावना अधिक करता है। अतः अवस्था की अधिकता के साथ साथ मनुष्य क्रमशः निर्बल परमाणुओं को खींचता और एक दिन अपने विस्वास के अनुसार मर भी जाता है।

अत्यन्त छोटे बालकों पर उनके मां-बाप की भावना का प्रभाव अधिक पड़ता है; क्योंकि अत्यन्त छोटे लड़के की अपनी भावना कुछ नहीं रहती। अत्यन्त छोटा लड़का अधिकतर अपने पिता माता की भावना के अनुसार जीता और मरता है। यही कारण है कि जो यह सोचता रहता है कि "ऐसा न हो कि हमारा बालक मर जाय" तो उसका लड़का अवश्य मर जाता है। क्योंकि ऐसे

पिता माता की भावना मृत्यु की ओर अधिक रहती है। लड़कों पर उनके पूर्व जन्म की भावना का भी प्रभाव पड़ता है।

बस, यदि आप शरीर से अमर होना चाहते हैं तो दृढ़ विश्वास के साथ आज ही कह दीजिए कि हम अमर हो गए, बस, निश्चय जानिए कि आप अमर हो गए। नित्य इस अमृतत्व की भावना से ; भोजन, पान और श्वास के रास्ते शरीर के भीतर वे ही परमाणु आवेंगे जो अमर सजीव और सबल होंगे। ऐसी भावना करने पर वे ही परमाणु शरीर में आते हैं जो पहले से भी अधिक सजीव और बलवान् अणु को खींच सकें। अमृतत्व की भावना उन तमाम परमाणुओं को जो शरीर के भीतर आते जाते हैं वैसाही बनाती जाती है जिससे वे शरीर को नीरोग, युवा और अमर बनाये रहें।

दीपक की लौ वा ज्योति को सब लोग जानते हैं। दीपक की बत्ती में से प्रकाश ऐसे वेग से निकल रहा है जैसे पिचकारी में से जल। बल्कि इससे भी अधिक अत्यन्त वेग से निकलता है। पिचकारी से जब जल निकलता है तो उसके मुंह के पास जैसी घनी और स्थूल धारा रहती है वैसी आगे चलकर नहीं रहती। आगे चलकर वह बिखर जाती है। इस जगह पर आप पुष्पवाटि-काओंके फौव्वारेको भी दृष्टान्तमें ले सकते हैं। दीपककी ज्योति भी एक फौव्वारा है जो बत्ती के पास अत्यन्त घना और स्थूलरूप में रहता और दो अंगुल के ऊपर जाकर चारों तरफ छितरा जाता

है। यद्यपि इस दीपक से प्रकाश प्रत्येक क्षण में निकल निकल कर बाहर फैल रहा है पर इतने वेग से निकलता है कि दीपक के पास जो दो अंगुल ऊंची उसकी लौ या ज्योति है वह सदा घनी रहती है और यह तब तक घनी रहती है जब तक इसमें तैल है।

ठीक इसी तरह का यह शरीर भी है। इसमें से करोड़ों परमाणु हरवक्त श्वास, मलमूत्र तथा प्रश्वेद के रास्ते निकल निकल कर बाहर जा रहे हैं। पर उतने हो आ भी रहे हैं। इस लिए इतना खर्च होने पर भी यह शरीर रूपी स्थूल ज्योति बराबर बनी रहती है। जैसे दीपक में जबतक तैल रहता है तब तक उसका घन और स्थूल प्रकाश बना रहता है उसी तरह से शरीर में भी एक तैल है वह तैल जबतक रहेगा तबतक यह शरीर नहीं मर सकता।

शरीर का तैल चेतन आत्मा है। इसी के भरोसे यह शरीर उसी तरह स्थित है जैसे तेल के भरोसे दीपक। पर इस दीपक का तैल चेतन, अक्षय, अखण्ड, अमर, अव्यय और अनन्त है। इस चेतन आत्मा रूपी तेल का क्षय अनन्त काल में भी नहीं हो सकता। अतः जिस शरीर का सम्बन्ध ऐसी आत्मा से है उस शरीर का नाश भी कभी नहीं हो सकता।

पर अब प्रश्न यह है कि यदि ऐसा है तो यह शरीर मरता क्यों है? बात यह है कि आत्मा चेतन है और चेतन, विचार, मन, इच्छा, भावना, कल्पना और विश्वासमय है। हमारी आत्मा वही और वैसीही हो जाती है जैसी हमारी भावना और विश्वास होता

है। आज तक लोगों का यही विश्वास रहा कि शरीर अमर नहीं हो सकता यही कारण है कि वह स्वभाव से अमर होता हुआ भी आजतक मरता रहा। अतः इन बातों पर विचारकर, यह समझ लीजिये कि आत्मा एक अक्षय तैल है। इसमें विचार मन वा विश्वास रूपी बत्ती पड़ी हुई है जिसमें से शरीर रूपी ज्योति निकल कर प्रत्यक्ष हो रही है। यह कभी बुझ नहीं सकती पर आपका इसपर दृढ़ विश्वास होना आवश्यक है। बाहर की आंधी भी इसे बुझाने में असमर्थ है। क्योंकि आत्मा वह वस्तु है जिसका बाहर और भीतर समान अधिकार है।

तैल अक्षय है। अतः यह ज्योति रूपी शरीर भी अक्षय और अविनाशी है। शरीर स्वभाव से ही अमर है। कमी केवल विश्वास का है। विश्वास कीजिए कि हमारा शरीर अमर है। हम शरीर से भी अविनाशी हैं, बस आप अमर और अविनाशी हैं। जिसको दृढ़ विश्वास है कि हम अमर हैं उसका नाश प्रलय काल में भी नहीं हो सकता।

मृत्यु का कारण डर भी है।

मनुष्य जैसा सुनता या पढ़ता है उसी के अनुसार उसका विश्वास भी होता है। विश्वास के अनुसार डर भी होता है हिन्दुओं का मूर्ति पर विश्वास है अतः यदि किसी हिन्दू को मूर्ति उखाड़नी पड़े तो वह डर जायगा। यदि किसी कारणवश उसने ऐसा किया तो वह अवश्य दुःख उठावेगा। पर मुसलमानों का इसपर विश्वास नहीं है अतः उन्हें यह दुःख नहीं होता। मनुष्य अपने विश्वास के अनुसार ही सारा सुख दुःख उठा रहा है। मनुष्य कहता है कि सब कुछ टल सकता है पर मृत्यु नहीं टल सकती। यह एक जन्मका विश्वास नहीं है किन्तु जन्म जन्मान्तर का विश्वास है। मृत्यु इसी वजह से आती है कि, उसका आना लोग ध्रुव समझते हैं। सारे संसार का मृत्यु पर विश्वास है संसार के सभी मजहब मृत्युको अटल मानते हैं-यही कारण है कि मृत्यु अटल है। जितने साधु सन्त हैं सभी कहा करते हैं कि मृत्यु तुम्हारे सिरपर है. इसको न भूलना; मृत्यु को याद रखना। जो कहता है यही कहता है, यह कोई नहीं कहता कि मृत्यु को भूल जाओ। यदि याद करना है, तो परमात्मा को याद करो जो अमर है। अमर को स्मरण करने से शरीर भी अमर हो

जायगा। अमर और अमृतत्व की खोज करो, तुम भी वही हो जाओगे। वेद में कहा है—"ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति" उसका जानने वाला—उसको खोजने वाला वही हो जाता है। खोजनेपर मालूम होता है कि हम भी वही हैं; हम अन्य नहीं हैं। भूल से अपने को अन्य मानते हैं। वेद कहता है—

"अन्योऽसौ अन्योऽहमस्मीति न सवेद यथा पशुः।"

मैं अन्य हूं. वह ईश्वर अन्य है, ऐसा मानने वाला वेद के अनुसार पशु है। वेद, वेदान्त और उपनिषदों का यह मुख्य सिद्धान्त है कि मनुष्य ब्रह्म है, अन्य नहीं। ब्रह्म अमर है तो हम भी अमर हैं। यदि ब्रह्म नहीं मर सकता तो हम भी कदापि नहीं मर सकते।

दोहा।

"राम मरें तो हम मरें, नातरु मरे वलाय।
सांचे गुरु का बालका, मरे न मारा जाय॥"

कैसा अच्छा सिद्धांत है? इन बातों को तत्व से समझो; इनमें तत्व है। ये निरर्थक नहीं कहे गए हैं—ये पागलों के वचन नहीं हैं। हमने इस पुस्तक के अगले अध्यायों में इस विषयपर विस्तारसे विचार किया है। अमर होना स्वाभाविक है—यह मनुष्यका स्वाभाविक गुण है। पर ज्ञान न होने के कारण मनुष्य इस बातको नहीं समझता और मृत्यु से अत्यन्त भयभीत होता है। एक पुरानी

कहानी है । "एक वार यमराजने मृत्युको बुलाकर कहा कि तुम महा-मारी और विशूचिका को लेकर मृत्यु लोक के अमुक नगरमें जाओ और ४०० मनुष्य मार लाओ । मृत्यु, महामारी ओर विशूचिका के साथ आई और एक दिन में आठ सौ मनुष्य मर गए । यमराज ने मृत्यु से जवाव तलव किया कि हमने तो चार ही सौ मांगे थे आठ सौ क्यों आए ? उसने कहा—हमने भी मारा चार ही सौ पर डर कर चार सौ और मर गए—इसमें हमारा क्या दोष ? यह कथा तो अवश्य असत्य है । पर, यह जिस तात्पर्य्य से कही गई वह सर्वथा ठीक है । डरकर आध ही नहीं मरते; हमारा तो यह सिद्धान्त है कि सभी डरकर मरते हैं । मरना डरसे होता है । कोई स्वाभाविक धर्म नहीं है । हमारा स्वाभाविक धर्म अमृतत्व है । पर वहुत से वेदान्ती कहेंगे कि शरीर अमर नहीं है; आत्मा अमर है । यह ठीक नहीं है । वेदान्त कहता है कि द्वैत है ही नहीं; संसार में सिवाय ब्रह्म के दूसरी कोई वस्तु नहीं है । वेदान्त कहता है कि द्वैत भ्रमसे भासता है । यदि सव कुछ ब्रह्म ही है सो शरीर अन्य कैसे ? साधु लोग यह जानते हुए भी वड़ी भूल करते हैं । साधु लोग उस अजर अमर ईश्वर का स्मरण नहीं करते, किन्तु कहते हैं—याद रखना—

"तुम्हें जाना ज़रूरी है ।"

उपदेशक अपने उपदेश में, पंडित अपनी कथा में, मुल्ला अपने वाज़में, पादरी अपने लेक्चरों में यही कहा करते हैं कि मनुष्य

की मौत जरूरी है—यह एक न एक दिन आने वाली ही है। इन सब बातों के सुनने तथा सबको मरते हुए देखकर लोगोंपर मृत्यु का बड़ा भारी आतङ्क छा गया है। इसी विश्वास ने—इसी डरने—इसी विपरीत ज्ञानने-मृत्यु का आना ध्रुव कर दिया है।

हम बराबर देखते हैं कि जो आज है वह कल नहीं रहा। एक एक करके हमारे घरमें ही कितने मनुष्य मर गए। यह सब देखते हुए भी अपने को अमर मानना बहुत कठिन है। पर लोग यह नहीं सोचते कि मृत्यु जो इतनी बलवती हो रही है उसका कारण हमारा विश्वास और डर है, दूसरा कुछ नहीं। किसी ने ठीक ही कहा है—

"जो डरा सो मरा।"

बहुत से लोग देखने में निडर मालूम होते हैं और ऊपर से निडरता की बातें करते हैं; पर वास्तव में निडर नहीं होते। एक गांव में लोग कहा करते थे कि अमुक पीपल पर एक भूत रहता है। एक दिन रात में बात आनेपर एक युवक ने कहा कि भूत सूत कुछ नहीं सब गप्प है। लोगों ने कहा—क्या तुम उसी पीपल के नीचे अर्ध रात्रि में जा सकते हो। उसने कहा—अवश्य जा सकते हैं। लोगों ने कहा कि अच्छा आज रातमें तुम जाओ और प्रमाण के लिए लोगों ने एक खूंटा दिया और कहा कि इस खूंटेको पीपल के नीचे गाड़कर चले आना। इससे यह मालूम हो जायगा कि तुम

वहां गए थे। जाड़े का दिन था, युवक एक लम्बी शेरवानी पहने हुए था। अर्धरात्रिको वह खूंटा और मुंगड़ी लिए हुए उस पीपलके नीचे आया। युवक पीपल के नीचे आते ही डर गया। उसने चाहा कि खूंटा गाड़कर शीघ्र भाग चलें। आते ही वह बैठ गया और, बड़ी शीघ्रता से खूंटा गाड़ने लगा। बैठनेपर उसकी लम्बी शेरवानी जमीन पर फैल गयी थी। जल्दी में उसने इस बातका खयाल नहीं किया। खूंटा कपड़े को लेता हुआ ज़मीन में गड़ गया। खूंटा गाड़ते समय एक चिम गीदड़ने पीपल के पत्तों को हिला दिया। युवक बहुत डर गया। रोम २ खड़े हो गए। बेंतकी तरह कांपने लगा। शरीर में खून न रहा। खूंटा गड़ जानेपर चाहा कि शीघ्र यहां से भाग चलें। पर वह तो वेतरह फंस चुका था। ज्यों ही भागने के लिए उठा उसे मालूम हुआ, कि भूत ने हमें पकड़ लिया है। बस; बेहोश होकर गिर पड़ा और वहीं मर गया। सवेरे लोग आए और इस करुणा जनक घटना को देखकर अत्यन्त दुःखी हुए। एक विद्वान् ने कहा भूत और मृत्यु का दूसारा नाम डर है।

विश्वास रखिए कि जिस शरीर के रोम २ में अविनाशी ईश्वर वा अमरात्मा व्यापक है वह कभी मर नहीं सकता। विश्वास की दृढ़ता से डर और भय का नाश होगा और डर के नाश से मृत्यु दूर होगी।

शब्दों का अपार बल।

शब्द शून्य मात्र नहीं है। शब्द अवस्तु नहीं हैं; वस्तु हैं। विभिन्न प्रकार के शब्दों का विभिन्न रूप में पञ्च तत्वों पर धक्का लगता है। आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी सबपर इसक प्रभाव पड़ता है। जितना धक्का इसका बाहर के तत्वों पर लगता है उतनाही शरीर के भीतरी अङ्गों और तत्वों पर भी लगता है। यह धक्का निष्फल नहीं जाता; किन्तु बहुत बड़ा प्रभाव डालता है। किसी वस्तु का धक्का हो, कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य डालता है। शब्द का धक्का और प्रभाव लोगों ने प्रत्यक्ष देखा है। कभी कभी डांटनेसे छोटे २ लड़कोंके हृदय पर इतने जोर का धक्का लगा है कि वे गिर पड़े और बेहोश हो गए हैं। शब्द के धक्के से फूल आदि धातु के वर्त्तन झनक उठते हैं। हिम्मत के साथ डांटने पर झपटता हुआ शेर भी रुक जाता और निर्बल हो जाता है।

शब्द संकल्प रूप भी होता है। भावना, मन, इच्छा और संकल्प का शब्द एक स्थूल रूप है। सारी इच्छाएं, सारी भावनायें और सारे संकल्प शब्दोंके रूपमें होते हैं हम मनमें जिस वस्तु की इच्छा करते हैं वह इच्छा शब्दरूपिणी हुआ करती है। हम भीतर मन में

जिन बातों को सोचते हैं सभी शब्दमयी होती हैं। मन के भीतर का विचाररूप शब्द व्यक्त नहीं होता, उसका स्थूल रूप नहीं होता, उसको सिवा हमारे मन के दूसरा कोई नहीं सुनता, पर होता है शब्द रूप ही। "यह करना चाहिए यह नहीं करना चाहिए"—बहुत से लोग इस तौर पर सोचते हुए वा अपने मन से बातचीत करते हुए मुंह से भी बोलते जाते हैं। कितने मन में सोचते हुए हाथ भी चमकाते और फेरते जाते हैं। इनको देखने से मालूम होता है कि ये किसी दूसरे से बातचीत कर रहे हैं पर वहां कोई दूसरा नहीं रहता; केवल उनका मन रहता है। कितने मन में बहुत बड़ा २ व्याख्यान दे जाते हैं। कितने सोचते २ जोर से चिल्ला उठते हैं। बात यह है कि चाहे आप सुन न सकें—चाहे वे व्यक्त न हों—चाहे वे मुंह पर न आ जायं—पर सारी इच्छायें, सारे संकल्प और सारे विचार शब्द रूप होते हैं। हृदय में कोई ऐसी इच्छा नहीं होती जिसमें शब्द न हो। मन, इच्छा, विचार और भावना सब शब्द रूप हैं। हम भावना और विश्वास की अपार शक्ति पर कई बार लिख चुके हैं। और ये भावनायें और विश्वास शब्द रूप होते हैं। अतः भावना और विश्वास में जो बल है—जो उसका अद्भुत चमत्कार है वह सब शब्दों का है। शब्द इच्छा और मन रूप होता है। मन चेतन है। चेतनता आत्माका गुण और आत्मा ब्रह्म है। अतः शब्द भी ब्रह्म है यह स्पष्ट सिद्ध होता है। शब्द भी ब्रह्म है—यह भी ठीक नहीं है किन्तु वास्तविक बात यह है कि, शब्द ही ब्रह्म है और ब्रह्म ही शब्द है।

ब्रह्म चेतन है। चेतन में इच्छा भावना या विचार अवश्य होता है। भावना, इच्छा या विचार शब्द रूप होते हैं, अतः ये सभी ब्रह्म-स्वरूप हैं। आत्मा मनोमय होता है और मन शब्द मय होता है। ब्रह्म का स्थूल रूप आत्मा, आत्मा का स्थूल रूप मन और मन का स्थूल रूप शब्द होता है। स्थूलता वास्तविकतामें फरक नहीं डालती। स्थूल शब्द समझने के लिए बीच में डाल दिया गया है वास्तव में ब्रह्म, आत्मा, मन और शब्द सब एक हैं, जो शक्ति ब्रह्म में है वही शब्दों में है। आप अपने शब्दों को निर्बल खयाल करते हैं। उसे सर्व शक्तिमान् नहीं समझते, इसी से वह निर्बल हो रहा है। आप विश्वास के साथ कहिए—शब्द का बल समझ कर कहिये-यह जान कर कहिए कि यह ब्रह्मस्वरूप है—अवश्य पूरा होगा। आपका आशीर्वाद निरर्थक नहीं हो सकता पर जो कुछ कहिए शब्द की शक्ति पर विश्वास कर के कहिए।

वेद में कहा है कि उसने इच्छा किया कि मैं एक से अनेक हो जाऊं और इसीसे सारा संसार उत्पन्न हो गया। ब्रह्म ने वेद के अनुसार सृष्टि के आदि में कहा था कि मैं एक हूं अनेक हो जाऊं बस सारे संसार की उत्पत्ति हो गई। इञ्जील में भी कहा है कि आदि में वचन था और वचन से सब कुछ हुआ। कुरान में भी कहा है कि खुदा ने कहा कि हो जा (कुन) बस सब कुछ हो गया। तात्पर्य्य कहने का यह है कि सारा संसार शब्दों से उत्पन्न हुआ है। अब भी जो कुछ हो रहा है उसके कारण शब्द ही हैं। किसी

कोर्य्य को लीजिए उसका कारण शब्द ही है। संसार की बड़ी बड़ी लडाइयां शब्दों ही के कारण हुई हैं। सुलह भी शब्दों ने ही किया। प्रेम और विरोध सबका कारण शब्द है। विना इच्छा के कुछ नहीं होता। और इच्छा स्वयम् शब्दों में हुआ करती है। इच्छा का प्रत्यक्ष रूप शब्द है। शब्द इच्छा को व्यक्त करके और अपने धक्के से सारे संसार को हिला कर इच्छा को पूर्ण करा लेता है। पानी की इच्छा हुई कि वह इच्छा शब्द के रूप में मुंह से निकल पड़ी बस निकलते ही नौकर ने पानी उपस्थित किया। मुंहमें पहले पानी शब्द आया और बाद को पानी स्वयम् आ पहुंचा।

सच्ची बात यह है कि इच्छा स्वयम् अर्थ रूप है। जिसकी आप इच्छा करते हैं उसके मिलने में जरा भी संदेह नहीं है। जिसकी आप इच्छा करते हैं वह इच्छा स्वयम् वह वस्तु है। इच्छा सफलता की वह सीढ़ी है जिसके बाद सफलता स्वयम् खड़ी रहती है। इच्छित वस्तु को प्राप्त करने में देरी नहीं लग सकती। पर न मिलने का कारण यह है कि इच्छा के जो शब्द हमारे भीतर से उठते हैं उनपर हम स्वयम् विश्वास नहीं करते। हमें स्वयम् शंका हो जाती है। हम इच्छा करते ही कह देते हैं कि इसका मिलना कठिन है यह मिलेगा नहीं। हमारे अविश्वास के शब्द इच्छा के शब्दों की हत्या करा डालते हैं, नहीं तो मनुष्य के शब्दों में ब्रह्म की शक्ति है।

जो शब्द भीतर से उठे विश्वास के साथ उठे। विश्वास के साथ उठे हुए वा मुंह से बाहर निकले हुए शब्दों में ब्रह्म की शक्ति है।

कहिए और विश्वास के साथ कहिए कि हम नीरोग हैं आप नीरोग हो जायेंगे। कहिए कि हम अमर हैं—मृत्यु आप के वश में हो जायगी। विश्वास के साथ कहिए कि हमें वह वस्तु अवश्य प्राप्त होगी उसके मिलने में देरी न लगेगी। चाहे देरी भी लगे पर मिलेगी अवश्य। आप अपना भाग्य, अपना कर्म, अपना संसार, अपनी परिस्थित और अपने लिए संसार की सारी सामग्री, अपने शब्दों और अपनी आज्ञाओं से बुला सकते और बना सकते हैं। आप को जिस समय अपने शब्दों की शक्ति का पता लगेगा उस समय आप विधाता और ईश्वर का मुंह नहीं ताकेंगे।

ईश्वर आपके भीतर है। आप स्वयम् ईश्वर हैं। आपकी आज्ञा आपके शब्द ईश्वर की आज्ञा और ईश्वर के शब्द हैं। आप विश्वास के साथ आज्ञा दीजिए वह अवश्य हो जायगा। बोले हुए शब्दों से संसार के परमाणुओं में जो धक्का लगता है और इनसे जो लहर उत्पन्न होती है वह तब तक शान्त नहीं हो सकती जब तक कि वह अंत तक जाकर पूरी न हो जाय। पर हमारा अविश्वास इसका बहुत बड़ा विरोधी और नाशक है। हमारे शब्दोंसे जो लहर उत्पन्न होती है वह विराट रूप ईश्वर की आत्मा को कंपा देती है, वह निरर्थक नहीं हो सकती। एवरेस्ट की चोटी पर चढ़ने वालों ने यह देखा कि जगह जगह वहां पर हिम के चट्टान और बादल जमे हुए हैं। वहां पर एक शब्द भी ज़रा ज़ोर से बोल देने पर चढ़ने वालों के ऊपर बहुत बड़ी आफत आजाती है। बोलने से एक एक फलौंग का हिमखण्ड

(वर्फ की चट्टान) ऊपर से खिसक पड़ती है और सम्भव है कि सबके सब चढ़ने वाले उसीके नीचे दब जांय। बोलनेसे वहां के जमे हुए बादल भी हिल जाते हैं और बरसने लगते हैं। बोलने से आकाशमें लहर उत्पन्न होती है उसीसे यह सब हुआ करता है। शब्द स्वयम् अपने अणुओं वह शक्ति रखते हैं जिससे इच्छित पदार्थ बन जायं। हम जिस वस्तु की इच्छा या कल्पना करते हैं वह इच्छा स्वयम् वही वस्तु हैं। मन इच्छा वा वस्तु हमारी कल्पना से बाहर नहीं हैं। कल्पना से स्वप्न में सारा संसार बन जाता है। स्वप्नमें मन द्वारा बिना रोड़े के सड़क पिट जाती, बिना वृक्षों के बाग लग जाता और हजारों मकान बनकर तैयार हो जाते हैं। मन स्वयम् वस्तु रूप और संसार रूप है। यह संसार की सारी चीजों को बात की बात में बना सकता है। समाधि के समय इच्छा का अद्भुत चमत्कार क्षण क्षण में प्रत्यक्ष देखने में आता है। योगी ने इच्छा किया नहीं कि वह बना नहीं। समाधि के समय योगी जिस वस्तु की इच्छा करता है वह वस्तु उसी समय बनकर तैयार हो जाती है।

स्थूल संसार भी स्वप्न के समान मनोमय और कल्पना मय है। स्वप्न की सृष्टि, समाधि की सृष्टि और जाग्रदवस्था की सृष्टि में कुछ भेद अवश्य है। पर मन और कल्पनाका प्रभाव सर्वत्र है। इसपर हम अपने दूसरे लेखों में बहुत कुछ लिख चुके हैं। प्लेग की कल्पना होते ही—प्लेगसे भयभीत होते ही—ज्वर और गिल्टी

दिखलाई देने लगती है। यदि कल्पना से ज्वर बढ़ जाता है तो क्या कल्पना से उतर नहीं सकता ? यदि हमारा यह विचार-यह भय कि-ऐसा न हो कि हमें गिल्टी हो जाय गिल्टी उत्पन्न कर सकता है, तो क्या हमारी निश्चयता और हमारा यह विचार कि हमारे गिल्टी नहीं हो सकती वा हमारी गिल्टी अभी अच्छी हो जायगी हमारा कल्याण नहीं कर सकता ? हमारी इच्छा में हमारी कल्पना में या हमारे शब्दों में बनाने और बिगाड़ने की पूरी शक्ति है।

"यथा मनसा मनुते तथा वाचा वदति" जैसा मन में विचार करता है वैसाही वचन से बोलता है। मनुष्य अधिकतर कुछ न कुछ मनन किया करता है। इसका मतलब यह हुआ कि मनुष्य भीतर अपने मनमें, अपने मनसे, बातचीत किया करता है; कुछ न कुछ बोला करता है। देखने में आया है कि इन अव्यक्त शब्दोंका प्रभाव शरीरपर पड़ता जाता है। मनुष्य के मनन करते हुए चेहरे का उतार चढाव और रंग इस प्रकार से बदलता है कि बिना बोलेही योगी अभ्यासी वा इस विद्याके जानने वाले बतला देते हैं कि यह मनुष्य अमुक बात सोच रहा है। भावनाओं के अनुसार मुखकी आकृति और वर्ण बदलता जाता है। सोचते समय कभी मनुष्य का चेहरा पीला पड़ जाता है; कभी प्रसन्न हो जाता है, कभी ललाट का चर्म सिकुड़ जाता है, कभी भृकुटी तिरछी हो जाती और कभी दोनों कपोल लाल हो जाते हैं। इसके सिवाय और भी कई तरह के रूपान्तर और परिवर्तन हुआ करते हैं। इन रूपान्तरों

को देखकर किसी के भीतर का भाव या मनका विचार जान लेना कठिन नहीं है।

पूर्वोक्त बातों से यह सिद्ध होता है कि हमारे प्रत्येक शब्द का और प्रत्येक विचार का हमारे शरीर पर अद्भुत रूपसे प्रभाव पड़ता है। अतः आपको अपने शरीर का जो अङ्ग जिस प्रकारका बनाना हो अपनी आज्ञासे बना सकते हैं। आप नित्य उठकर अपने शरीर को आज्ञा दीजिए कि हमारे शरीर का अमुक अङ्ग ठीक हो जाय इस आज्ञा का वा आपके इस वाक्य और शब्द का प्रभाव कुछ दिनों में प्रत्यक्ष देखने में आवेगा। जिस अङ्ग के लिए आप जो अज्ञा देंगें वह अवश्य पूरा होगा। मनुष्य के शब्दो में रचना करने की वा विधाता की पूरी शक्ति है।

यदि कोई मनुष्य दरिद्र है तो उसे नित्य उठकर कहना चाहिये कि हमारी दरिद्रता मिट जाय हम धनी हो जांय। यह भी सोचना चाहिए कि हम धनो हो गए और हमारे चारों तरफ रूपया और सोना चांदी पड़ा हुआ है। सब सन्दूक रूपयोंसे भरी है। इससे अवश्य दरिद्रता मिट जायगी। यदि किसी का दिमाग ठीक नहीं है तो उसे अपने दिमाग को आज्ञा देना चाहिए कि ठीक हो जा। बस कुछ दिनोंतक ऐसा कहने से अवश्य ठीक हो जायगा। यदि किसी को अजीर्ण रोग है, यदि किसो के पेट की अग्नि ठीक नहीं है तो पेटपर हाथ फेरकर नित्य पेटको आज्ञा देना चाहिए कि ठीक हो जा पेट ठीक हो जायगा।

मनोबल द्वारा नीरोग रहने का अद्भुत उपाय ।

एक जगह पर कई प्रकार के वृक्ष हैं; जैसे, आम, जामुन, कटहल और पीपल इत्यादि। इनकी उत्पत्ति और स्थितिपर विचार कीजिए। पहले पहल इनके छोटे २ बीज जमीनमें डाल दिए गए। इनमें से जो बीज अच्छे और मरे हुए नहीं थे वे बढ़ने लगे और धीरे २ खूब बड़े और मोटे वृक्ष हो गए। सोचना यह है कि ये सब बीज एक ही प्रकार की मिट्टी, हवा और पानीसे अपनी २ खूराक ग्रहण कर रहे हैं। पर बढ़ने पर एकही प्रकार के नहीं हुए; इसका क्या कारण? जामुनके बीजने जिस खूराक को जिस जगहसे ग्रहण किया उसी खूराक को उसी जगह से आमके बीज ने भी ग्रहण किया पर आम और जामुन दोनों दो तरह के हुए; इसका कारण क्या है? इसका कारण विभिन्न वृक्षों की विभिन्न प्रकार वाला मन, आत्मा और भाव है।

मिट्टी या अनेक धातुओं के चार अचेतन घड़ों में एक ही जगह की मिट्टी उठाकर अलग २ चारों में भर दीजिए और फिर कुछ दिनों के लिए उन्हें योंही छोड़ दीजिए। कुछ रोज क्या महीनों बाद देखिए इनचारों घड़ोंकी मिट्टीमें विभिन्नता नहीं आवेगी। ऐसा

क्यों ? इसलिए कि ये घड़े जड और अचेतन हैं। इन सभोंने मिट्टी को पचाकर अपना रूप नहीं दिया। पर यही मिट्टी जब चार किस्मके वृक्षों के भीतर जाता है तो इसमें विभिन्नता आ जाती है वही हवा, वही जल और वही मिट्टी विभिन्न वृक्षों में जाकर विभिन्न रुप धारण करती है। इसका कारण यह है कि चेतन अपने मनोबल, इच्छा और भावके अनुसार तमाम चीज़ों को बनाता रहता है। जड में यह शक्ति नहीं होती। वृक्ष भी चेतन हैं। वे जबतक सूखकर जीव हीन नहीं हो जाते तबतक इसी मिट्टी और जलको ग्रहण कर अपने रूप और भावको बदलते रहते हैं।

चेतन क्या वस्तु है। चेतनता और मन दोनों एकही वस्तु है। चेतनता और मन एक चीज के दो नाम हैं। चेतनता, मन, अन्तःकरण जीव और जीवनशक्ति सब एकही हैं। जीवनी शक्ति या मन अपने भाव, विश्वास और संकल्प के अनुसार संसार के तमाम चीजोंको बदल सकता है यही मनोबलका गुप्त भेद वा रहस्य है। इसी मनोवलद्वारा विभिन्न वृक्षों में एकही प्रकारकी मिट्टी और जल जाकर विभिन्न रूप और गुणको प्राप्त होता।

मनुष्य को ही लीजिए। एकही प्रकार का भोजन विभिन्न प्रकार के मनुष्यों और प्राणियों में जाकर विभिन्न रूपको धारण करता है। इससे यह स्पष्ट प्रकट होता है कि मनमें अपार शक्ति है। मन आपके शरीर के तमाम अणुओं को आपके भाव तथा विश्वास

के अनुसार बना देता है । यद्यपि भावना के अनुसार रूपान्तर धीरे २ होता है मगर होता है जरूर । अतः यदि आप नित्य यही भावना करें कि हम शरीर से अमर और नीरोग हैं तो धीरे २ आपका शरीर ऐसा हो जायगा कि आप सचमुच नीरोग, स्वस्थ और अमर हो जावेंगे । आपका मन आपके विश्वास के अनुसार शरीर के तमाम अणुओं को धीरे २ ऐसा बना डालेगा कि आप मृत्यु के पाशसे छूट जायेंगे और आपके ऊपर मृत्युका कुछ वश न चल सकेगा।

विश्वास की दृढ़ता में कमी होने से कुछ अधिक देरी लगती है । पर भावना शरीरके तमाम अणुओंपर बिना प्रभाव डाले रह नहीं सकती। मनोबल एक विचित्र बल है। ज्योंही आप कहेंगे कि हमारा अमुक रोग दूर हो जाय त्यों ही उस रोग के अणु बदलने लगेंगे और धीरे २ वह आपका रोग दूर हो जायगा। इसी तरह ज्योंहीं आप अपने मनमें पूर्ण विश्वास के साथ कहते हैं कि हम अमर हैं त्योंही आप अमृतत्व के नजदीक पहुंचकर मृत्यु के बन्धन को तोड़ डालते हैं । मनमें ऐसी शक्ति है कि उसमें अमृतत्व की भावना आते ही शरीर के भीतर एक बहुत बड़ा परिवर्तन अत्यन्त शीघ्रता के साथ होने लगता है। शरीरमें एक हलचल सा पैदा हो जाता है। शरीर के एक २ अणु की गति मृत्यु की ओर से मुड़कर अमृतत्व की ओर हो जाती है।

रोग या मृत्यु का कारण केवल अज्ञान है। रोग या मृत्यु सिवाय भ्रम के और कुछ नहीं है। भ्रम यह है कि लोग जानते हैं कि मृत्यु और रोगका होना आवश्यक है। लोग यह नहीं जानते कि यह विश्वास करते ही कि हम अमर और नीरोग हैं अमर और निरोग हो जाते हैं। यह भेद या सच्चा ज्ञान जवतक मनुष्य रोग और मृत्युके वशमें रहेगा। सच्चा ज्ञान मनुष्य को सब वन्धनों से मुक्त कर पूर्ण स्वतन्त्रकर देता है।

शरीर पर तो मनका जो प्रभाव है वह किसी से छिपा नहीं है। देखिए जब हम हाथ को सिकोड़ने की इच्छा करते हैं तो वह उसी वक्त सिकुड़ जाता है। उठाने की इच्छा होते ही वह उठता और फैलाने की इच्छा पर तुरत फैल जाता है। क्या हाथ के भीतर उसे उठाने के लिए कोई और हाथ है जो उसे उठता है? कभी नहीं। केवल इच्छा शक्ति ही हाथ को क्या शरीर मात्रको उठाती बैठाती और चलाती है। इच्छा होते ही शरीर का प्रत्येक अङ्ग यन्त्र के समान नाचने लगता है। शरीरमें हर प्रकार की गति इच्छा होते ही उसी वक्त उत्पन्न हो जाती है। इस शरीर के प्रत्येक यन्त्र प्रत्येक अङ्ग प्रत्येक अणु का चलाने वाला केवल मन की इच्छा शक्ति है।

मन का प्रत्येक परिवर्तन शरीर के ऊपर विना प्रभाव डाले नहीं रहता। मन में क्रोध आते ही आंखें लाल २ हो जाती हैं। मनमें भय का संचार होते ही सारा शरीर थर्राने और कांपने लगता है।

कभी २ अधिक डर जाने से असाध्य ज्वर चढ़ जाता है। क्रोध आने पर भी देखा गया है कि एक मनुष्य बैठा हुआ कुछ सोच रहा है, सोचते वक्त उसके मनके हर्ष और विषाद का चिन्ह साफ साफ शरीर के ऊपर दिखलाई देता है। सोचते वक्त आंखें घूमती उंगुलियां दायें बायें जातीं और मुंह बड़ बड़ाता है। कभी २ मनुष्य कुछ सोचकर आपही आप नाचने लगता है। मतलब यह कि इस शरीर के भीतर मनमें वह बल है जो शरीर के अणु २ को नचा सकता है। मनके भीतर नवीन विचारोंके आते ही शरीर के भीतर उसके अनुसार क्रिया शुरु हो जाती है। अतः अमृतत्व और आरोग्यता की भावना आते ही मनुष्य अमर और नीरोग होने लगता और हो जाता है।

यदि आप विश्वास के साथ इच्छा करें कि हम अमर और नीरोग हो जांय तो आपके विश्वास के साथ वही अणु भीतर जायंगे जो आपके शरीर को अमर बना दें। पानी और भोजन की भी वही दशा होगी। यही नहीं किन्तु जैसे ईख का पौद्रा साधारण मिट्टी को भी अपने भीतर खींच कर चीनी बना लेता है उसी तरह आपका सच्चा विश्वास और मन इस साधारण मिट्टी और जल को भीतर ले जाकर उन्हें अमर और निर्विकार बना देगा और मन शरीर के प्रत्येक अणु को ऐसा कर देगा जिससे यह शरीर को अमर और नीरोग रख सके।

जब मनके उतार और चढ़ावका चिन्ह शरीरके रोम रोम और चर्म पर प्रत्यक्ष देखा जाता है तो क्या कारण है कि मनुष्य केवल इच्छाशक्ति द्वारा सुन्दर, मनोहर और युवा नहीं हो जायगा ? अवश्य होगा। सुन्दर, मनोहर, प्रभावशाली, बलवान् और युवा बनने के लिए केवल मन से संकल्प करना होगा। बस सब हो जायगा।

मन में जरा सा डर आने से शरीर के रोम रोम खड़े हो जाते हैं। एक सेकेण्डमें मन शरीरके रोम २ को खड़ाकर देता है। इससे क्या यह नहीं साबित होता कि मन का शरीर के अवयवों पर अधिकार है। जरा सा मन के बिगड़ने से पेट इतना बिगड़ जाता है कि मतली मालूम होती, दस्त लगता और वमन होने लगता है। जो मन पेट के ऊपर इतना प्रभाव रखता है कि क्षणमात्र में विशूचिका उत्पन्न कर सकता है क्या वही मन पेट को ऐसा ठीक नहीं कर सकता कि शरीर के तमाम रोग मिट जायं और वह अमर हो जाय ?

मेस्मेरिज़म की सारी करामात मन से है। मानसी चिकित्सा द्वारा क्षणमात्रमें जो रोग दूर किया जाता है वह इसी मनकी करामात है। मन सब कुछ कर सकता है। मन आप का है और वह आप से अलग नहीं है। मन में और आप में कुछ भेद नहीं है। अतः आप सब कुछ छोड़ कर अपने ऊपर भरोसा करें। आप की आत्मा क्या, आप स्वयम् सर्व शक्तिमान् और ईश्वर हैं। आप को अपनी शक्ति पर विश्वास न करने के कारण ही सारा दुःख उठाना पड़ रहा है।

मनुष्य इच्छा स्वरूप है और कुछ नहीं। अनेक इच्छाओं के समूह का ही नाम मनुष्य है। जैसे २ उसकी इच्छा और विश्वास में परिवर्तन होता है वैसे वैसे वह स्वयम् बदलता जाता है। आत्मा या संसार का सच्चाज्ञान या प्रकृति का सच्चा नियम यही है और बिना इस सच्चे ज्ञान के कोई मुक्त नहीं हो सकता। ज्ञान ही वास्तविक बल है और बल ही मनुष्य को वह स्वतन्त्रता दे सकता है जिसमें अनन्त सुख, आनन्द और शान्ति है। इस आनन्द और सुख को प्राप्त कर इस सच्चे ज्ञानद्वारा यही मनुष्य ही ईश्वरत्व को प्राप्त होता है।

लोग कहते हैं कि ईश्वर करे कि हम आप नीरोग रहकर अधिक दिन तक जीवित रहें। मनुष्य अपनी तमाम इच्छाओं और आशाओं को दूसरे के भरोसे पर डाल देता है। वह यह नहीं जानता कि वह सर्वशक्तिमान् उसी की सहायता करता है जो अपने ऊपर भरोसा करते हैं। आप के मन और विश्वास का ही नाम ईश्वर है। यह मन ही सर्व शक्तिमान् है। यदि ईश्वर चाहेंगे तो आप बच जायंगे यह बात नहीं है। यह गलत है। सच तो यह है कि यदि आप चाहेंगे तो आप बच जायंगे आप स्वयम् अपने को बचाना नहीं चाहते। ईश्वर के सच्चे ज्ञाता कहते हैं कि ईश्वर किसी को जिलाना या मारना नहीं चाहता। वह कुछ नहीं चाहता वह बिलकुल निरीह है। ईश्वर इच्छा रहित है। ईश्वर के ज्ञाता कहते हैं कि ईश्वर हमारी आत्मा से अलग नहीं है। सच्चा ज्ञान

हमें साफ साफ वतलाता है कि हमारी ही इच्छा ईश्वर की इच्छा है। जो स्वयम् रोगी रहना और मरना चाहता है उसे कोई नीरोग और अमर नहीं कर सकता। जिसका यह विश्वास है कि मनुष्य का मरना आवश्यक है उसे ब्रह्मा भी अमर नहीं कर सकते। मनुष्य अज्ञान वश अपने वश की चीज दूसरे के भरोसे पर छोड़ देता है। लोगों को अपनी शक्ति का पता नहीं है। छोटी बुद्धि इस सच्चे ज्ञान तक नहीं पहुंचती और लोग अपने को अत्यन्त दुर्वल पाकर अपने वश की वात को ईश्वर पर छोड़ देते और उसकी पूर्ति के लिए ईश्वर की प्रार्थना करते हैं। संसार के इन असंख्य मनुष्यों की प्रार्थना सुनते २ ईश्वर भी थक गया है और अव वह किसी की कुछ नहीं सुनता।

साम्प्रदायिक विचारों और पुराने भद्दे सिद्धान्तों ने मनुष्य की बुद्धि को इस तौर पर घेर कर जकड़ रक्खा है कि उसे तोड़कर इस सच्चे ज्ञान का उसमें प्रवेश कराना वहुत कठिन है। मनुष्य अपने मन, आत्मा और अपने विश्वास का अपार वल देखता हुआ भी, उसे स्वीकार करता और समझता हुआ भी हृदय से अच्छी तरह नहीं स्वीकार करता क्योंकि उसके पुराने विचार उसे ऐसा करने से रोकते हैं।

मनुष्य को परतन्त्र रहते २ परतन्त्रता की आदत पड़ गई है। यद्यपि आत्मा के स्वभावानुसार सभी स्वतन्त्रता की इच्छा करते

सारे संसार के भीतर, विश्व भरमें, अबतक यह आशा बराबर होती चली आयी है कि हम मृत्यु से बच सकते हैं वा अच्छा होता कि हम मृत्यु से बच जाते। अतः मनुष्य जाति की यह आशा एक न एक दिन अवश्य सफल होगी। मनुष्य उस उपाय को खोज निकालेगा जिससे वह अमर हो। मनुष्य जाति का सबसे बड़ा शत्रु मृत्यु है इसका जीतना सबके लिए अत्यंत आवश्यक और सबसे पहला कर्त्तव्य है

कुछ लोग कहते हैं कि हमारे शास्त्र हमें शरीर से अमर होना नहीं बतलाते। लोग शास्त्रों का प्रमाण देकर कहते हैं कि जन्म के बाद मरण और मरण के बाद जन्म आवश्यक है। ठीक है। यदि जन्म के बाद मरण आवश्यक है तो मरण के बाद जन्म भी अवश्य होना ही चाहिए। पर ऐसा मानने से तमाम शास्त्र स्वयम् असत्य हो जायंगे। हमारे हिन्दू शास्त्र ही नहीं यदि ऐसा माना जाय तो सभी मजहब झूठे पड़ जायंगे। मजहबी दीवार मुक्ति की बुनियाद पर खड़ी है और मुक्ति एक ऐसी अवस्था है जहां जाकर मनुष्य अमर हो जाता और जन्म मरण के बन्धन से छूट जाता है। मजहबी, मनुष्य, धार्मिक लोग, या ज्ञानी पुरुष कहा करते हैं कि अमुक प्रकार के धर्म या ज्ञान से मनुष्य मरने के बाद फिर जन्म नहीं पावेगा; अर्थात् वह मुक्त हो जावेगा। अतः अब सोचना यह है कि यदि मरण के बाद जन्म अनिवार्य्य और

अवश्यम्भावी है तो किसी भी मनुष्य की मुक्ति कैसे हो सकती है? मरण के बाद मुक्त होना जरूरी है। पर मुक्त हो कैसे सकता है यदि मरण के बाद जन्म ध्रुव और अनिवार्य्य हैं। और यदि मरण के बाद जन्म निश्चित नहीं है तो जन्मके बाद मरण भी ध्रुव और निश्चित नहीं हो सकता। इसीसे हमने कहा है कि जन्मके बाद मरण अनिवार्य्य मानने से संसार के सारे मजहब झूठे पड़ जायंगे।

यदि ज्ञान और उच्च विचारद्वारा मरणके बाद जन्मका न होने देना सम्भव है तो ज्ञानद्वारा जन्म के बाद मरण का भी न होने देना असम्भव नहीं है। केवल सच्चे ज्ञान की आवश्यकता है। और, वह सच्चा ज्ञान यह है कि आप अपने हृदय से इस बात को निकाल दें कि शरीर नाशमान् है। शरीर नाशमान् नहीं है; आत्मा की तरह वह भी अमर है। सच्ची बात यह है कि संसार का एक अणु भी नाशमान नहीं है। और जब संसार के किसी अणु का नाश नहीं होता तो आत्मा और शरीर का नाश कैसे हो सकता है। इस बात को यदि तत्व से समझ लिया जाय तो इस सच्चे ज्ञान के प्रभाव से मृत्यु का भय हमारे हृदय से निकल जायगा और हम अमर होजायंगे।
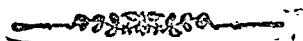
मृत्यु को जीतने का उपाय।

लोग शरीर से अमर होना या मृत्यु को जीतना असम्भव समझते हैं। बड़े २ महात्मा कहते हैं कि सब कुछ हो सकता है पर यह नहीं हो सकता। कहते हैं कि काल महा बलवान् है; इसका जीतना मनुष्य के लिए असम्भव है। इन सब बातों के होते हुए भी इस बात को सभी चाहते हैं, कि हम अमर हो जांय। मरना कोई नहीं चाहता। संसार में सबसे भयंकर वस्तु 'मृत्यु' है। संसार में मृत्यु-समाचार से बढ़कर अशुभ समाचार कोई नहीं है। कवि तुलसीदास जी का निम्नलिखित दोहा बहुत ही सत्य है:—

अरब खरब लौं दरब है,
उदय अस्त लौं राज।
तुलसी एक दिन मरन जो,
आवहिं कौने काज॥

संसार का सारा पदार्थ, सारा ज्ञान, सारी प्रभुता व्यर्थ है यदि एक न एक दिन मरना निश्चित है। अतः अमर होना सभी चाहते हैं। संसार के सारे अच्छे २ पदार्थों में यदि अमरत्व भी मिलाकर रख दिया जाय और मनुष्य से कह दिया जाय, कि इसमें से जो चाहो एक पदार्थ उठा लो, तो वह अमरत्व ही उठावेगा।

अमरत्व को असम्भव समझ कर ही मनुष्य दूसरे पदार्थों के लिए दौड़ता है।

संसार उन्नति कर रहा है। सांसारिक मनुष्योंने अपनी बुद्धि से क्या नहीं कर दिखाया। वीस वर्ष पहले जो बात असम्भव मानी जाती थी वह सम्भव हो गई। वहुत से विद्वानों ने तो यही कह दिया है कि संसार में असम्भव कुछ नहीं—यत्न करते जाओ। जैसे वड़े वड़े वैज्ञानिक और वस्तुओंके आविष्कार में लगे हैं उसी तरह से कुछ लोग अमृतत्व की भी खोज में लगे हैं। मनुष्य का सवसे वड़ा लक्ष्य अमृतत्व को पा जाना ही है। मनुष्य को उस दिन कितनी प्रसन्नता होगी (इसका अनुमान करना भी कठिन है,) जिस दिन वह मृत्यु को जीत लेगा। पर वहुत से लोग ऐसा भी कहते हैं कि अमर होना वेकार है यदि जरा, रोग और निर्वलता शरीर के साथ ही रही; रोगी निर्वल और वुड्ढा होकर जीने से मरना ही अच्छा है। पर, सोचने की वात यह है कि जो मृत्यु को जीत सकेगा वह क्या निर्वलता, जरा (वुढापा) और रोग को न जीत सकेगा? ऐसा हो नहीं सकता। जरा और निर्वलता मृत्यु की छोटी वहनें हैं, इसका जीतना मृत्यु के जीतने से आसान है। जिस उपाय से मृत्यु जीती जायगी उसी उपाय से इनका भी नाश किया जा सकता है।

वहुत से विद्वान्,लोमस, मार्कण्डेय, श्वेतऋषि, नंदी, अश्वत्थामा, कागभुशुण्डि, भरतृहरि, गोरक्षनाथादि का दृष्टांत देकर अमर होना

असम्भव नहीं कहते । बहुत से योगी तो ऐसे हैं जो कहते हैं कि हिमालय के जङ्गलों में सैकड़ों महात्मा हैं जो अमर हैं । पुराने लोग अमर हुए हों वा न हुए हों, हिमालयमें अमर लोग हों या न हों, पर हमने यहां पर जिस ज्ञानका वर्णन किया है—उसे जानकर उसके अनुसार चलकर और उस पर दृढ विश्वास कर लोग अवश्य अमर हो सकते हैं ।

मृत्यु या काल बड़ा प्रबल है—यह बात नहीं है । मृत्यु संसार के सब वस्तुओं से बलहीन है । मृत्यु उसी का नाम है जहां सब प्रकार की शक्तियों का अभाव है । मृत्यु के निकट आते २ मनुष्य कमजोर होने लगता है; यहां तक कि मृतक शरीर सर्वथा शक्तिहीन हो जाता है । जबतक जीवन है तबतक शक्ति है । शक्ति और जीवन में कुछ भेद नहीं है; दोनों एक हैं । ठीक, इसी तरह शक्ति या बलके अभाव का नाम मृत्यु है । शक्ति का अभाव या मृत्यु दोनों एक हैं । जहां शक्ति है वहां मृत्यु नहीं मानी जा सकती ।

मृत्यु क्या चीज़ है ? यदि इसपर विचार किया जाय तो यही मालूम होगा, कि शक्तिके अभाव का ही नाम मृत्यु है । मृत्यु न शरीर का नाम है न आत्मा का; किंतु जीवन और बलके अभाव का ही नाम मृत्यु है । अतः इस मृत्यु को बलवती कहना भूल है । पर लोगों का यह दृढ विश्वास है कि मृत्यु बड़ी प्रबल है । यद्यपि

प्रवल नहीं है पर इस विश्वास ने उसे सचमुच प्रवल बना दिया है। मनुष्य के इस विश्वासने ही मृत्यु को निमन्त्रण दे रक्खा है।

जीवनके सामने मृत्युका कुछ नहीं चल सकता। जीवन आता है आत्मा से। आत्मा और जीवन एक वस्तु है। जीवन, प्राण, आत्मा या जीव सब एकही पदार्थ के कई नाम हैं। जीव के रहने से ही शरीर में सब प्रकार का बल आता है।

आत्मा या जीव शक्ति और वलका भंडार है। आत्मा सर्व शक्तिमान् है। इस सर्व शक्तिमान् आत्मा का निर्जीव मृत्यु कुछ नहीं कर सकती। मनुष्य अपने विश्वास से मरता है। मनुष्य का यह विश्वास है कि उसे एक न एक दिन अवश्य मरना है; इसी से उसे एक न एक दिन अवश्य मरना पड़ता है। यदि हमें, यह दृढ विश्वास हो कि मृत्यु हमारी कुछ नहीं कर सकती तो वह सचमुच कुछ नहीं कर सकती। कर, वह, सकता है जिसके पास कुछ वल हो। पर मृत्यु में तो कुछ है ही नहीं। कुछ नहीं या 'अभाव' का ही नाम मृत्यु है। भाव और अस्तित्व आत्मा में है। आत्मा में ही वल है। पर वड़े आश्चर्य की बात यह है कि लोग जितना मृतक शरीर से डरते हैं उतना सजीव से नहीं। सुनसान मैदान में रात को मृतक शरीर को देखकर कितने डरकर गिर पड़े हैं और प्राण तक छोड़ दिए हैं। यह विश्वास की ही महिमा है। अपना विश्वास ही अपना प्राण-घातक होता है। नहीं तो बेचारा मृतक शरीर

किसी को नहीं मारता, न उसमें मारने की शक्ति ही रहती है। डरने वालेका विश्वास ही उसे मार डालता है।

एक मेडिकल कालेज का किस्सा है कि, उस कालेज के एक कमरे में परीक्षा के लिए एक मृतक शरीर पड़ा था। एक दिन, रात में कालेजके कुछ छात्रों में यह बात चली कि, क्या हममें से कोई उस कमरे में जाकर उस मुर्दकी एक उंगली काट कर ला सकता है? रात अधिक गई थी; कमरे में किसी प्रकार की रोशनी भी न थी। एक छात्र जाने के लिए तैयार हुआ। कुछ रुपयों की बाजी भी लगी। छात्रावस्था में हंसी दिल्लगी बहुत सूझती है। एक छात्र पहले ही से जाकर उस मुर्दे के बगल में खड़ा रहा। जिस छात्र ने रात को मुर्दे को उंगली काट लाने की प्रतिज्ञा की थी वह उस अन्धेरे कमरे में पहुंच गया और मुर्दे की उंगली काट करज्यों ही चलने लगा कि बगल के छात्र ने उसका हाथ पकड़ लिया। इसने समझा कि मुर्दे ने ही हाथ पकड़ लिया है। इसे सोचते ही वह गिर पड़ा और उसी समय बेहोश हो गया। बाहर लाया गया-होश में लाने के सैकड़ों उपाय हुए-पर वह होश में न आया और अन्त में मर गया।

मतलब यह है कि हम यदि अपने हृदय से मृत्यु के भय को निकाल कर इस बातका दृढ़ निश्चय करलें कि आज से हम अमर

हो गए और मृत्यु के समान शक्तिहीन वस्तु हमारा कुछ नहीं कर सकती तो हम सचमुच मृत्यु पर विजय लाभ कर सकते हैं।

मनोबल द्वारा नीरोग रहने का अद्भुत उपाय ।

एक जगह पर कई प्रकार के वृक्ष हैं; जैसे, आम, जामुन, कटहल और पीपल इत्यादि । इनकी उत्पत्ति और स्थितिपर विचार कीजिए। पहले पहल इनके छोटे २ बीज ज़मीनमें डाल दिए गए । इनमें से जो बीज अच्छे और मरे हुए नहीं थे वे बढ़ने लगे और धीरे २ खूब बड़े और मोटे वृक्ष हो गए । सोचना यह है कि ये सब बीज एक ही प्रकार की मिट्टी, हवा और पानीसे अपनी २ खूराक ग्रहण कर रहे हैं । पर बढ़ने पर एकही प्रकार के नहीं हुए; इसका क्या कारण? जामुनके बीजने जिस खूराक को जिस जगहसे ग्रहण किया उसी खूराक को उसी जगह से आमके बीज ने भी ग्रहण किया पर आम और जामुन दोनों दो तरह के हुए; इसका कारण क्या है? इसका कारण विभिन्न वृक्षों की विभिन्न प्रकार वाला मन, आत्मा और भाव है ।

मिट्टी या अनेक धातुओं के चार अचेतन घड़ों में एक ही जगह की मिट्टी उठाकर अलग २ चारों में भर दीजिए और फिर कुछ दिनों के लिए उन्हें योंही छोड़ दीजिए । कुछ रोज क्या महीनों बाद देखिए इनचारों घड़ोंकी मिट्टीमें विभिन्नता नहीं आवेगी । ऐसा

क्यों ? इसलिए कि ये बड़े जड और अचेतन हैं। इन सभोंने मिट्टी को पचाकर अपना रूप नहीं दिया। पर यही मिट्टी जब चार किस्मके वृक्षों के भीतर जाता है तो इसमें विभिन्नता आ जाती है वही हवा, वही जल और वही मिट्टी विभिन्न वृक्षों में जाकर विभिन्न रुप धारण करती है। इसका कारण यह है कि चेतन अपने मनोबल, इच्छा और भावके अनुसार तमाम चीजों को बनाता रहता है। जड में यह शक्ति नहीं होती। वृक्ष भी चेतन हैं। वे जबतक सूखकर जीव हीन नहीं हो जाते तबतक इसी मिट्टी और जलको ग्रहण कर अपने रूप और भावको बदलते रहते हैं।

चेतन क्या वस्तु है। चेतनता और मन दोनों एकही वस्तु है। चेतनता और मन एक चीज के दो नाम हैं। चेतनता, मन, अन्तःकरण जीव और जीवनशक्ति सब एकही हैं। जीवनी शक्ति या मन अपने भाव, विश्वास और संकल्प के अनुसार संसार के तमाम चीजोंको बदल सकता है यही मनोबलका गुप्त भेद या रहस्य है। इसी मनोबलद्वारा विभिन्न वृक्षों में एकही प्रकारकी मिट्टी और जल जाकर विभिन्न रूप और गुणको प्राप्त होता।

मनुष्य को ही लीजिए। एकही प्रकार का भोजन विभिन्न प्रकार के मनुष्यों और प्राणियों में जाकर विभिन्न रूपको धारण करता है। इससे यह स्पष्ट प्रकट होता है कि मनमें अपार शक्ति है। मन आपके शरीर के तमाम अणुओं को आपके भाव तथा विश्वास

के अनुसार बना देता है। यद्यपि भावना के अनुसार रूपान्तर धीरे २ होता है मगर होता है जरूर। अतः यदि आप नित्य यही भावना करें कि हम शरीर से अमर और नीरोग हैं तो धीरे २ आपका शरीर ऐसा हो जायगा कि आप सचमुच नीरोग, स्वस्थ और अमर हो जायेंगे। आपका मन आपके विश्वास के अनुसार शरीर के तमाम अणुओं को धीरे २ ऐसा बना डालेगा कि आप मृत्यु के पाशसे छूट जायेंगे और आपके ऊपर मृत्युका कुछ वश न चल सकेगा।

विश्वास की दृढ़ता में कमी होने से कुछ अधिक देरी लगती है। पर भावना शरीरके तमाम अणुओंपर बिना प्रभाव डाले रह नहीं सकती। मनोबल एक विचित्र बल है। ज्योंही आप कहेंगे कि हमारा अमुक रोग दूर हो जाय त्योंही उस रोग के अणु बदलने लगेंगे और धीरे २ वह आपका रोग दूर हो जायगा। इसी तरह ज्योंहीं आप अपने मनमें पूर्ण विश्वास के साथ कहते हैं कि हम अमर हैं त्योंही आप अमृतत्व के नजदीक पहुंचकर मृत्यु के बन्धन को तोड़ डालते हैं। मनमें ऐसी शक्ति है कि उसमें अमृतत्व की भावना आते ही शरीर के भीतर एक बहुत बड़ा परिवर्तन अत्यन्त शीघ्रता के साथ होने लगता है। शरीरमें एक हलचल सा पैदा हो जाता है। शरीर के एक २ अणु की गति मृत्यु की ओर से मुड़कर अमृतत्व की ओर हो जाती है।

रोग या मृत्यु का कारण केवल अज्ञान है। रोग या मृत्यु सिवाय भ्रम के और कुछ नहीं है। भ्रम यह है कि लोग जानते हैं कि मृत्यु और रोगका होना आवश्यक है। लोग यह नहीं जानते कि यह विश्वास करते हो कि हम अमर और नीरोग हैं अमर और निरोग हो जाते हैं। यह भेद या सच्चा ज्ञान जवतक मनुष्य रोग और मृत्युके वशमें रहेगा। सच्चा ज्ञान मनुष्य को सब बन्धनों से मुक्त कर पूर्ण स्वतन्त्रकर देता है।

शरीर पर तो मनका जो प्रभाव है वह किसी से छिपा नहीं है। देखिए जब हम हाथ को सिकोड़ने की इच्छा करते हैं तो वह उसी वक्त सिकुड़ जाता है। उठाने की इच्छा होते ही वह उठता और फैलाने की इच्छा पर तुरत फैल जाता है। क्या हाथ के भीतर उसे उठाने के लिए कोई और हाथ है जो उसे उठता है? कभी नहीं। केवल इच्छा शक्ति ही हाथ को क्या शरीर मात्रको उठाती बैठाती और चलाती है। इच्छा होते ही शरीर का प्रत्येक अङ्ग यन्त्र के समान नाचने लगता है। शरीरमें हर प्रकार की गति इच्छा होते ही उसी वक्त उत्पन्न हो जाती है। इस शरीर के प्रत्येक यन्त्र प्रत्येक अङ्ग प्रत्येक अणु का चलाने वाला केवल मन की इच्छा शक्ति है।

मन का प्रत्येक परिवर्तन शरीर के ऊपर विना प्रभाव डाले नहीं रहता। मन में क्रोध आते ही आंखें लाल २ हो जाती हैं। मनमें भय का संचार होते ही सारा शरीर थर्राने और कांपने लगता है।

कभी २ अधिक डर जाने से असाध्य ज्वर चढ़ जाता है। क्रोध आने पर भी देखा गया है कि एक मनुष्य बैठा हुआ कुछ सोच रहा है, सोचते वक्त उसके मनके हर्ष और विषाद का चिन्ह साफ साफ शरीर के ऊपर दिखलाई देता है। सोचते वक्त आंखें घूमती उंगुलियां दायें बायें जातीं और मुंह बड़ बड़ाता है। कभी २ मनुष्य कुछ सोचकर आपही आप नाचने लगता है। मतलब यह कि इस शरीर के भीतर मनमें वह बल है जो शरीर के अणु २ को नचा सकता है। मनके भीतर नवीन विचारोंके आते ही शरीर के भीतर उसके अनुसार क्रिया शुरु हो जाती है। अतः अमृतत्व और आरोग्यता की भावना आते ही मनुष्य अमर और नीरोग होने लगता और हो जाता है।

यदि आप विश्वास के साथ इच्छा करें कि हम अमर और नीरोग हो जांय तो आपके विश्वास के साथ वही अणु भीतर जायंगे जो आपके शरीर को अमर बना दें। पानी और भोजन की भी वही दशा होगी। यही नहीं किन्तु जैसे ईख का पौदा साधारण मिट्टी को भी अपने भीतर खींच कर चीनी बना लेता है उसी तरह आपका सच्चा विश्वास और मन इस साधारण मिट्टी और जल को भीतर ले जाकर उन्हें अमर और निर्विकार बना देगा और मन शरीर के प्रत्येक अणु को ऐसा कर देगा जिससे वह शरीर को अमर और नीरोग रख सके।

जब मनके उतार और चढ़ावका चिन्ह शरीरके रोम रोम और चर्म पर प्रत्यक्ष देखा जाता है तो क्या कारण है कि मनुष्य केवल इच्छाशक्ति द्वारा सुन्दर, मनोहर और युवा नहीं हो जायगा ? अवश्य होगा। सुन्दर, मनोहर, प्रभावशाली, बलवान् और युवा बनने के लिए केवल मन से संकल्प करना होगा बस सब हो जायगा।

मन में जरा सा डर आने से शरीर के रोम रोम खड़े हो जाते हैं। एक सेकेण्डमें मन शरीरके रोम २ को खड़ाकर देता है। इससे क्या यह नहीं साबित होता कि मन का शरीर के अवयवों पर अधिकार है। जरा सा मन के विगड़ने से पेट इतना विगड़ जाता है कि मतली मालूम होती, दस्त लगता और वमन होने लगता है। जो मन पेट के ऊपर इतना प्रभाव रखता है कि क्षणमात्र में विशूचिका उत्पन्न कर सकता है क्या वही मन पेट को ऐसा ठीक नहीं कर सकता कि शरीर के तमाम रोग मिट जायं और वह अमर हो जाय ?

मेस्मेरिज़्म की सारी करामात मन से है। मानसी चिकित्सा द्वारा क्षणमात्रमें जो रोग दूर किया जाता है वह इसी मनकी करामात है। मन सब कुछ कर सकता है। मन आप का है और वह आप से अलग नहीं है। मन में और आप में कुछ भेद नहीं है। अतः आप सब कुछ छोड़ कर अपने ऊपर भरोसा करें। आप की आत्मा क्या, आप स्वयम् सर्व शक्तिमान् और ईश्वर हैं। आप को अपनी शक्ति पर विश्वास न करने के कारण ही सारा दुःख उठाना पड़ रहा है।

मनुष्य इच्छा स्वरूप है और कुछ नहीं। अनेक इच्छाओं के समूह का ही नाम मनुष्य है। जैसे २ उसकी इच्छा और विश्वास में परिवर्तन होता है वैसे वैसे वह स्वयम् बदलता जाता है। आत्मा या संसार का सच्चाज्ञान या प्रकृति का सच्चा नियम यही है और बिना इस सच्चे ज्ञान के कोई मुक्त नहीं हो सकता। ज्ञान ही वास्तविक बल है और बल ही मनुष्य को वह स्वतन्त्रता दे सकता है जिसमें अनन्त सुख, आनन्द और शान्ति है। इस आनन्द और सुख को प्राप्त कर इस सच्चे ज्ञानद्वारा यही मनुष्य ही ईश्वरत्व को प्राप्त होता है।

लोग कहते हैं कि ईश्वर करे कि हम आप नीरोग रहकर अधिक दिन तक जीवित रहें। मनुष्य अपनी तमाम इच्छाओं और आशाओं को दूसरे के भरोसे पर डाल देता है। वह यह नहीं जानता कि वह सर्वशक्तिमान् उसी की सहायता करता है जो अपने ऊपर भरोसा करते हैं। आप के मन और विश्वास का ही नाम ईश्वर है। यह मन ही सर्व शक्तिमान् है। यदि ईश्वर चाहेंगे तो आप बच जायंगे यह बात नहीं है। यह ग़लत है। सच तो यह है कि यदि आप चाहेंगे तो आप बच जायंगे आप स्वयम् अपने को बचाना नहीं चाहते। ईश्वर के सच्चे ज्ञाता कहते हैं कि ईश्वर किसी को जिलाना या मारना नहीं चाहता। वह कुछ नहीं चाहता वह बिलकुल निरीह है। ईश्वर इच्छा रहित है। ईश्वर के ज्ञाता कहते हैं कि ईश्वर हमारी आत्मा से अलग नहीं है। सच्चा ज्ञान

हमें साफ़ साफ बतलाता है कि हमारी ही इच्छा ईश्वर की इच्छा है। जो स्वयम् रोगी रहना और मरना चाहता है उसे कोई नीरोग और अमर नहीं कर सकता। जिसका यह विश्वास है कि मनुष्य का मरना आवश्यक है उसे ब्रह्मा भी अमर नहीं कर सकते। मनुष्य अज्ञान वश अपने वश की चीज दूसरे के भरोसे पर छोड़ देता है। लोगों को अपनी शक्ति का पता नहीं है। छोटी बुद्धि इस सच्चे ज्ञान तक नहीं पहुंचती और लोग अपने को अत्यन्त दुर्बल पाकर अपने वश की बात को ईश्वर पर छोड़ देते और उसकी पूर्ति के लिए ईश्वर की प्रार्थना करते हैं। संसार के इन असंख्य मनुष्यों की प्रार्थना सुनते २ ईश्वर भी थक गया है और अब वह किसी की कुछ नहीं सुनता।

साम्प्रदायिक विचारों और पुराने भद्दे सिद्धान्तों ने मनुष्य की बुद्धि को इस तौर पर घेर कर जकड़ रक्खा है कि उसे तोड़कर इस सच्चे ज्ञान का उसमें प्रवेश कराना बहुत कठिन है। मनुष्य अपने मन, आत्मा और अपने विश्वास का अपार बल देखता हुआ भी; उसे स्वीकार करता और समझता हुआ भी हृदय से अच्छी तरह नहीं स्वीकार करता क्योंकि उसके पुराने विचार उसे ऐसा करने से रोकते हैं।

मनुष्य को परतन्त्र रहते २ परतन्त्रता की आदत पड़ गई है। यद्यपि आत्मा के स्वभावानुसार सभी स्वतन्त्रता की इच्छा करते

हैं पर वास्तव में यह परतन्त्रता का स्वभाव इतना दृढ़ हो गया है कि विना परतन्त्र रहे मनुष्य को संतोष नहीं होता। जो किसी प्रकार की परतन्त्रता नहीं मानता वह भी कम से कम ईश्वर को अपना संचालक मानकर उसकी वश्यता स्वीकार कर लेता है। इसका कारण यह है कि मनुष्य से विना गुलाम बने रहा नहीं जाता पर शुद्ध आत्मा या अन्तःकरण यही चाहता है कि हम सर्वथा स्वतन्त्र रहें। अतः यह मनुष्य तमाम परतन्त्रताओं को छांट कर भी ईश्वर की गुलामी से अलग होने की हिम्मत नहीं रखता। इसका कारण यही है कि इसकी गुलामी की आदत बहुत पुरानी हो गई है।

ईश्वर ने चाहे हमें बनाया हो या न बनाया हो पर हमारी कल्पनाओं ने ईश्वर को अवश्य बनाया है। यद्यपि ईश्वर को किसी ने अभी तक किसी इन्द्रिय से प्रत्यक्ष नहीं किया तथापि मन उसकी कल्पना करने से मुख नहीं मोड़ता। मतलब साफ २ यह है कि ईश्वर भी हमारे इसी मन की कल्पना है। ईश्वर को भी इसी मन ने बना डाला है। सच्ची बात यह है कि हम से अलग कोई दूसरा ईश्वर नहीं है; हम स्वयम् सर्व शक्तिमान् ईश्वर हैं।

आपकीमृत्यु और रोग ईश्वर के वश में नहीं हैं वह आप के वश में हैं। किसी दूसरे के अनुग्रह की आवश्यकता नहीं, आप स्वयम् यदि चाहें तो मृत्यु और रोग पर विजय प्राप्त कर सकते हैं।

आप का मन मृत्यु का भी मृत्यु है; आप काल के भी काल हैं। पर यह वात हजारों युक्तियों और प्रमाणों को देने पर भी तवतक समझ में न आवेगी जव तक कि हृदय से दासता के भाव निकल न जायं। जव तक पुराने और भद्दे विचारों को छोड़कर हम लोग पक्षपात रहित नहीं हो जाते तव तक उस सच्चे ज्ञान का हृदय में घुसना कठिन है जिससे मनुष्य जीवनमुक्त, वलवान्, स्वतन्त्र, अमर और नीरोग हो सकता है।

हम नहीं कहते कि आप ईश्वर को अवश्य मानें किन्तु सच्ची वात यह है कि एक सर्व शक्तिमान ईश्वर अवश्य है और वह आपकी आत्मा, मन और आपके विश्वास से अलग नहीं है। उसमें और आप में रञ्चक मात्र का भेद नहीं है। उसके खोजनेवालों ने अन्त में यही देखा कि जिसे हम खोज रहे थे वह स्वयम् हम हैं। अपने से अलग किसी सर्व शक्तिमान् ईश्वर की कल्पना कल्पना ही मात्र है।

जो मनुष्य ईश्वर को ज़ोर ज़ोर से पुकार रहा है वह मानों उस सच्चे ईश्वर की अवज्ञा करता है जो उसी के पास वैठा है। जो ईश्वर को अपने से अलग जान कर उससे सहायता मांगता है उसे कभी सहायता नहीं मिलती। ऐसे हज़ारों दुःखी नित्य चिल्लाया करते हैं पर उसे कौन सुनता है। अङ्गरेजी के इस वाक्य का, कि (Heaven helps those who help themselves) का मतलव क्या है? इसका मतलव यह है कि ईश्वर उसीकी सहायता

करता है जो अपनी सहायता खुद कर सकता है। क्या इसका मतलब साफ साफ यह नहीं है कि वास्तव में अपनी आत्मा ही ईश्वर है; वास्तव में अपने सच्चे सहायक हम स्वयम् हैं। इतना साफ होने पर भी यदि कोई इसका दूसरा मतलब लगा ले तो उसकी दवा नहीं है। मतलब यह है कि सहायता करती है अपनी आत्मा और नाम होता है भूत, प्रेत, देवता और ईश्वर का। बड़े २ भक्त कहा करते हैं कि विश्वास करो तो तुमारा मनोरथ ईश्वर पूर्ण कर देगा। इसका क्या मतलब है? गोस्वामी तुलसीदास जो के समान साफ २ यह क्यों नहीं कहा जाता कि—

भवानीशंकरौवन्दे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ।

गोस्वामी जी के पूर्वोक्त वचन का भावार्थ यह है कि शंकर अर्थात् परमात्मा विश्वास रूप ही है। हमारा विश्वास ही सब कुछ करता है। यह स्पष्ट है कि विना विश्वास के ईश्वर भी कुछ नहीं करता। अतः सच्चा ज्ञान यही है कि हमारा विश्वास और मन संसार में सब कुछ कर सकता है। दूसरे से सहायता मांगने की आवश्यकता नहीं। जो आप चाहते हैं उसे आप ही का विश्वास, आप ही की आत्मा, और आप ही का मन, पूरा कर सकता है। यही सच्चा ज्ञान है। इसके विरुद्ध अपनी आत्मा और अपने विश्वास पर शंका करनी अज्ञानता और भ्रम है।

किस्सों और पुरानी कथाओं में ईश्वर ने मनुष्य जाति की बड़ी बड़ी सहायता की है। पर वह कथायें असत्य हैं और ग्रंथकारों की

गड़ी हुई हैं। मनुष्य जाति की सहायता जब २ हुई है तब २ उसके दृढ़ विश्वास और भावना द्वारा हुई है। इसी दृढ विश्वास और आत्मा की सच्ची शक्ति को ईश्वरीय शक्ति कहते हैं जिसका सच्चा नाम आत्मबल है।

मनुष्य की प्रवृत्ति अमृतत्व की ओर।

अमृतत्व की ओर मनुष्य की प्रवृत्ति बहुत पुरानी है। सृष्टि की आदि से ही मनुष्य अमृतत्व की खोज में है। मनुष्य की यह इच्छा बहुत पुरानी है। मनुष्य जाति आरम्भ से ही उस उपाय की खोज में थी कि जिससे वह अजर, अमर और अविनाशी हो सके। प्रत्येक सम्प्रदाय, धर्म और मजहब की उत्पत्ति का आदि कारण मनुष्य जाति के अमर होने की इच्छा ही है।

सृष्टि की आदि में ज्यों ही इस पृथ्वीतल पर मनुष्य का आविर्भाव हुआ त्योंही वह उस उपाय या विधि की खोज में लग गया जिससे वह अमर हो सके। पर ऐसी कोई विधि उसे न मिली।

पुराने धर्माचार्यों को इस प्रवृति से बड़ी सहायता मिली। धर्माचार्यों ने कहा कि लो, यहां पर नित्यता और अमृतत्व है। उन्होंने कहा कि शरीर तो अमर नहीं हो सकता पर आत्मा अमर है। पुराने धर्माचार्यों ने आत्मा की अमरता का उपदेश देना आरम्भ किया और अमृतत्व की भूखी जनता उसे बड़े चावसे सुनने लगी। यद्यपि जनता शरीर से ही अमर होना चाहती थी पर कुछ नहीं मिलने से आधा ही मिलना अच्छा है इस सिद्धान्त के अनुसार पूरा अमृतत्व न सिद्ध होते देखकर इस आधे को ही कबूल किया।

शरीर और आत्मा दोनों को मिलाकर एक पूरा मनुष्य होता है। शरीर को अमर करने का उपाय न देखकर, मनुष्य जाति को, आधे ही पर; अर्थात् केवल आत्मा की अमरता पर ही सन्तोष करना पड़ा और इन सम्प्रदायों को मनुष्य ने अपनाना आरम्भ कर दिया। अतः अब विचारवान् इस बात को अच्छी तरह समझ सकते हैं कि मनुष्य जाति की अमर होने की पुरानी इच्छाही प्रत्येक सम्प्रदाय, धर्म और मजहब का कारण है। यदि इसकी इच्छा जनता के भीतर न होती तो कोई किसी मजहब में दाखिल न होता।

संसार के सभी धर्माचार्य्य आत्मा की अमरता में एक मत हैं। इन बड़े २ सम्प्रदायों के भीतर लाखों मनुष्य के आने का कारण उनका वह उपदेश है जिसमें आत्मा को अमर बतलाया जाता है। हिन्दू मुसलमान और ईसाई सभी आत्मा को अमर मानते हैं।

मुक्त और मोक्ष उसी अवस्था को कहते हैं जिस अवस्था को प्राप्त कर मनुष्य अमर हो जाता है। मुक्ति को प्राप्त कर मनुष्य मृत्युके भयसे छूट जाता है। यही कारण है कि धार्मिक ग्रन्थों और मजहबी किताबों में मुक्ति, मोक्ष, नजात और Salvation की बड़ी धूम है। सम्प्रदाय, धर्म और मजहबमें यही एक वस्तु है जो जनताको अपनी ओर खींचती है। इसका कारण इस अध्यायका वही ऊपर वाला वाक्य है कि मनुष्यकी प्रवृत्ति अमृतत्वकी ओर है।

मनुष्य की सबसे बड़ी मनोकामना शरीर से अमर होना ही है। पर शरीर से अमर होता न देखकर उसे धर्माचार्य्यों द्वारा

आत्मा की अमरता लेकर ही सन्तोष करना पड़ा और इसे मजहब और धर्मकी छाया में कुछ शान्ति मिली। पर सच पूछिए तो अभी मनुष्य को पूरी शांति नहीं मिली है। मजहबको ऊपर से स्वीकार करते हुए भी संसार अमृतत्व की खोजमें है; संसार चाहता है कि किसी तरह शरीर भी अमर हो जाय। कौन कह सकता है कि मरने के बाद मनुष्य अवश्य रहेगा और इन धर्माचार्य्यों के कथनानुसार अमर होकर रहेगा। इसका कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है। यही कारण है कि जन साधारण को मजहबी बातों का पूरा २ विश्वास नहीं है और जनता उन उपायों और औषधियों की खोज में है जिससे शरीर अमर हो जाय।

मजहबी किताबों और धार्मिक उपदेशों को देखने से मालूम होता है कि ईश्वर सर्वशक्तिमान् है और बिना उसकी इच्छाके एक तृण भी नहीं हिल सकता। धर्मकी दृष्टिसे यदि देखी जाय तो बिना ईश्वर की इच्छाके न कोई बीमार पड़ता न मरता है। प्रत्येक धार्मिक यह जानता है कि बिना ईश्वर की इच्छा के हम नहीं मर सकते। पर औषधि के लिए दौड़ धूप करना और डाक्टरों की शरणमें जाना इस बातको सिद्ध करता है कि हमारा हृदय इस बातको पूरा नहीं मानता। इश्वर को सर्वशक्तिमान् जानते हुए भी मनुष्य ईश्वर को अच्छी औषधियोंसे निर्बल जानता है। मजहब ईश्वर को बलवान बतलाता है पर जनता का हृदय औषधि पर विश्वास करता है। मनुष्यको बिना औषधि के संतोष ही नहीं होता।

धर्म कहता है कि ईश्वर दुःख देकर तुम्हें तुम्हारे कर्मों का फल दे रहा है। पर मनुष्य इस बात को मानता हुआ भी औषधि द्वारा ईश्वर के कार्यमें बाधा डालता है। सच्ची बात यह है कि मनुष्य ईश्वर को मानता हुआ भी सचमुच नहीं मानता।

जो धार्मिक मनुष्य या ईश्वर के भक्त इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि हम इस मृत्यु के बाद मोक्ष या अमृतत्व लाभ करेंगे, ईश्वर के नजदीक जायेंगे, वा ईश्वर में मिल जायेंगे, वे भी मरना नहीं चाहते और औषधियों का प्रयोग कर जहां तक हो सके ईश्वर से दूर रहना चाहते हैं।

अमर हो जाने से संसार में भीड़ न होगी।

जीवन्मुक्त होने का सच्चा उपाय।

बहुत से लोग कहते हैं कि यदि लोग अमर हो गए और सन्तानोत्पत्ति होती गई तो बड़ा बखेड़ा होगा और थोड़े ही दिनों में इतने मनुष्य हो जायंगे कि खड़े होने के लिए भी कहीं जगह न मिलेगी। इसका उत्तर यह है कि मनुष्य को संतान की चाह उस समय तक है जब तक वह अपने को मर्त्य समझता है। लोग पुत्र क्यों चाहते हैं ? इस लिए कि उनके बाद उनके धनका स्वामी कोई दूसरा न हो, उनके धनका उपभोग करनेवाला उनके बाद भी कोई रहे। पर अमर होने पर लोगों की यह लालसा जाती रहेगी। यदि हमें यह मालूम हो जाय कि हमें सर्वदा जीवित रहना है तो पुत्र की कभी इच्छा न करेंगे। पुत्र की इच्छा तभी तक है जब तक मृत्यु है। मृत्यु गई, पुत्र की इच्छा गई। इच्छा गई कि पुत्र का होना बन्द हुआ। जिस इच्छाशक्ति द्वारा मृत्यु को रोक सकते हैं क्या उसी इच्छाशक्ति द्वारा हम उत्पत्ति को नहीं रोक सकते ? जो मनोबल मृत्यु को रोक सकता है वही जन्म को भी रोक देगा। जन्म या उत्पत्ति का रुकना तब कठिन था जब कि अमर लोग भी पुत्र की इच्छा रखते; पर विचार करने से यह मालूम

होता है कि अमर लोगों में पुत्र की इच्छा का होना असम्भव है। इच्छा के विरुद्ध संतान नहीं हो सकती। इसके सिवा जहां आमदनी होती है वहीं खर्च होता है-यही प्रकृति का नियम है। जब खर्च बन्द हो जाता है तो आमदनी भी बन्द हो जाती है। कूप में नवीन पानी तभी तक आता है जब तक उसका पानी खर्च होता रहता है। किसी किसी कूवें पर दो दो वा चार चार ढेकुल बराबर चलते हैं और जब तक ढेकुल या रहट चलता है वह पानी देता जाता है। वही कूवां यदि ढेकुल या रहट बन्द करनेपर भी पानी देता जाय तो कुछ दिनों में एक गावं का गावं डुबो सकता है। पर ऐसा नहीं होता। कूपसे यदि पानी का निकालना बन्द कर दिया जाय तो उसमें नवीन जलका आना भी बन्द होजाता है। प्रकृति का नियम है कि जब एक अपना स्थान छोड़ता है तब दूसरा उसकी जगह ग्रहण करता है। जहां मरण नहीं वहां जन्मका भी होना असम्भव है। जिस समय संसार में सर्वोत्कृष्ट सच्चे ज्ञान का प्रचार होगा उस समय लोग अमर हो जायंगे। अमर होते ही वा मृत्युके बन्द होते ही जन्म वा उत्पत्ति का क्रम भी बन्द हो जायगा। उस समय लोग सचमुच मुक्त होकर जन्म मरण के बन्धन से छूट जायंगे। जब तक मरण का क्रम बन्द न होगा, तब तक जन्म के क्रम का बन्द होना असम्भव है। मरण के बन्धन से छूटने पर संसार अनायास ही जन्म के बन्धन से छूट जायगा। जन्म मरण के चक्र से छूटने को ही मोक्ष कहते हैं। इस सिद्धान्त से मनुष्य

सच्चा मोक्ष लाभ कर सकता है। सच्चा जीवनमुक्त भी वही मनुष्य है जो जन्म मरण के वन्धन से छूट गया है। वह मनुष्य जीवनमुक्त कैसे हो सकता है जिसे मरण का भय लगा ही है। लोग वहुतों को जीवन मुक्त मानते हैं पर इन वातों पर गौर करके विचार करने पर मालूम होगा कि वे लोग वास्तव में जीवन्मुक्त नहीं हैं। जीवनमुक्त वही है जो जन्म मरण की चिन्ता से रहित है। जीवनमुक्त सव प्रकार के सव वन्धनों से रहित होता है। ब्रह्मज्ञान द्वारा मनुष्य अमर हो जाता है और अमर होकर जन्म मरण के वन्धनों से छूट जाता है। वर्त्तमान शरीर यदि मरनेवाला ही है तो मरण का भय कहाँ छूटा है। अतः सच्चा ब्रह्मज्ञानी वही है जिससे वर्त्तमान मरण भय भी छूट जाय।

वहुत दिनों से संसार मोक्ष के लिए यत्न कर रहा है। यह यत्न निष्फल न होगा। संसार जिस वेग से उन्नति कर रहा है उससे मालूम होता है कि वह अति शीघ्र जीवन्मुक्त हो जायगा। संसार वहुत दिनों से मृत्यु के जीतने का उपाय सोच रहा है। अव भी हजारों विद्वान् इसी खोज में लगे हैं। पर अव वह दिन दूर नहीं है जव कि संसार के वहुत से लोग मृत्यु को वश में करके अमर हो जायंगे।

अथर्ववेद में मनुष्य की अमरता ।

हमारा यह सिद्धांत है कि मनुष्य शरीर से भी अमर हो सकता है और उन्नति करते हुए मनुष्य जाति बहुत शीघ्र ऐसी अवस्था पर पहुंच जायगी जब कि मृत्यु उसके वशमें होगी और मनुष्य का शरीर भी अमर हो जायगा । अमर होने से संसार में इतनी भीड़ भी न होगी कि मनुष्य अपने जीवन से ऊब उठे और उसे रहने का स्थान ही न मिले । इस विषयको हम गताध्यायमें सिद्ध कर चुके हैं ।

शरीरसे अमर होनेके उपायों पर भी पिछले अध्यायोंमें बहुत कुछ लिखा जा चुका है और अनेक प्रमाणों तथा युक्तियों को देकर सिद्ध कर दिया है कि मनुष्य शरीर द्वारा भी अमर हो सकता है ।

यद्यपि यह बात ठीक नहीं है कि सब बातों का प्रमाण वेद से ही दिया जाय और जो वेदों में नहीं है वह कहीं नहीं है, पर ऐसे लोगोंको सन्तोष देनेके लिए जो बिना वेदोंके कुछ नहीं मानते हमने वेदोंका भी प्रमाण दे दिया है । पर, पिछले अध्यायोंमें जिन वेदोंका प्रमाण है उनमें अथर्ववेद नहीं है । अतः इस लेख में आज हम मनुष्य की अमरता वा शरीर के अमृतत्व पर अथर्ववेद के मन्त्रों का प्रमाण विस्तार के साथ देना चाहते हैं ।

पृथ्वी का कुछ हिस्सा धीरे २ पानी में मिलता रहता है । पृथ्वी के लिए यही जल प्रलय है । पृथ्वी का बहुत बड़ा हिस्सा जो बौल

में कई हजार मन होगा नित्य नदियों के प्रवाह में बह कर और हवा के झोंकों से उड़कर समुद्र में गिरता रहता है। इसी तरह से काल पाकर समुद्र में से कितने नये द्वीप निकलते भी रहते हैं। तात्पर्य्य कहने का यह है कि लाखों वर्षों में एक बहुत बड़ा द्वीप समुद्र के भीतर चला जायगा और इसी तरहसे लाखों वर्षों में कहीं पर एक महाद्वीप का निकल आना भी सम्भव है। एक द्वीप के नष्ट हो जाने से भी सब मनुष्य नष्ट नहीं हो जाते। किन्तु मनुष्य धीरे २ खिसकता हुआ दूसरे नये द्वीप में बस जाता है जैसे इसवक्त लोग सब जगह से जाकर अमरिका में बस रहे हैं।

जैसे लाखों वर्षों में एक द्वीप नष्ट हो जाता है उसी तरह से अरबों वर्ष के बाद एक भूगोल भी नष्ट हो जाता है। और अरबों वर्ष के बाद उस भूगोल की यह अवस्था हो जाती है कि उस भूगोल के मनुष्य दूसरे भूगोल में चले जाते हैं।

इसी तरह से बहुतपहले ब्राह्मण जाति वेदों को लेकर एक दूसरे भूगोल से इस भूगोल पर आकर बस गई। संस्कृत भाषा और वेद इस भूगोल की भाषा वा ज्ञान नहीं हैं। यह इस लोक का न होने के कारण एक अलौकिक ग्रन्थ है। संस्कृत भाषा कहीं किसी देश की कभी मातृभाषा नहीं थी। यह देववाणी है। और इस पृथ्वी के देवता ब्राह्मण कहलाते थे जो इस भाषा का ज्ञान रखते थे। आकाश के दूसरे द्यु लोक से ब्राह्मण वेदों को लेकर यहां आए इसलिए यह ब्राह्मण भी यहांपर देवता और भूसुर कहलाने लगे।

संस्कृत भाषा मनुष्य भाषा नहीं है। वेद इसलोक का ग्रन्थ नहीं है। वैदिक भाषा देववाणी है और ब्राह्मण देवता हैं। अतः वेदोंका अर्थ लगाना बहुत कठिन है। अबतक जो टीकायें हुई हैं वह वेदों के अनेक मन्त्रों के ठीक अर्थ पर नहीं पहुंच सकी हैं। सौमें निन्नावे मन्त्र अब भी ऐसे हैं जिसका ठीक अर्थ अभीतक कोई लगा नहीं सका है।

इस विषय को हम बहुत विस्तार के साथ लिख सकते हैं पर यदि लिखें तो इस विषयका एक स्वतन्त्र ग्रन्थ हो जायगा। अतः इसे यहीं छोड़ते हैं और कहना केवल यह चाहते हैं कि यह वेद संसारके आश्चर्य्य जनक विषयोंमें से हैं। वेदोंके सिद्धान्तानुसार मनुष्य शरीर से भी अमर हो सकता है। कुछ लोगोंने बिना छान बीन किए यह कह दिया है कि वेदों के अनुसार कोई सौ वर्ष से अधिक नहीं जी सकता। यह गलत है। आर्य्य समाज के प्रवर्त्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी मनुष्य की आयु सौ वर्ष से अधिक नहीं मानी है। पर वेदोंमें सौ वर्ष से अधिक आयु के अनेक प्रमाण हैं। और दूसरे वेदोंके प्रमाणों को पहले लिख चुके हैं। इस लेखमें केवल अथर्ववेद के मन्त्रों को प्रमाण उद्धृत करेंगे। अथर्ववेद के आठवें कांडमें आयु सम्बन्धी मन्त्र भरे हुए हैं।

शतं तेयुतं हायनान् द्वे युगे त्रीणिचत्वारि कृण्मः।
इन्द्राग्नी विश्वेदेवास्तेनुमन्यन्ताम हृणीयमानाः॥
का० ८ सू० २ मन्त्र २१॥

(ते) तेरी आयु (शतं हायनान) सौ वर्षों की हो या सौ वर्षों से बढकर (अयुतं हायनान्) दस हजार वर्ष की अथवा (द्वेयुगे-त्रीणि चत्वारि) दो युगों से बढाकर तीन-चार युगों की (कृण्मः) करते हैं । (इन्द्राग्नी) मन और ज्ञान (विश्वदेवाः) तथा दृढ-विश्वास द्वारा (अहृणीय मानाः) विना संकोच और लज्जाके यही आयु (ते अनुमन्यन्ताम) तेरे लिए मानें और कल्पना करें।

मन और मानने में बड़ी शक्ति है। पर वह दृढ विश्वासके साथ होना चाहिए। हमने अपने लेखों में यह सिद्ध कर दिया है कि मनुष्य सर्वथा मनोमय है । इस शरीर पर मनका ही शासन है। मन, शरीर को जैसा चाहे बना सकता है। अतः शरीर को नीरोग करके अमर भी मनही बना सकता है । पर मनको दृढ़ और बलवान् बनाने के लिए इस पुरानी भावना को निकाल देना चाहिए कि शरीर अमर नहीं हो सकता, या हो सकता है तो केवल १०० वर्षों तक इससे अधिक नहीं । यही सब बातें ऊपर के मन्त्रों में कही गई हैं। ऐसे लोग जो वेदों पर बहुत विश्वास करते हैं इसे देखें, पढ़ें और विचार करें । इससे उनका मन बलवान होगा और विश्वास दृढ हो जायगा । अच्छा होगा कि लोग अथर्ववेदके आठवें कांडको कुल पढ जायें और उसपर विचार करें। पाठक कहेंगे कि पूर्वोक्त मन्त्र में केवल दो, तीन और चार युगों की आयु मानी है पर अमर नहीं माना है। पर यह बात नहीं है। चार ही युग होते हैं अतः जो चारोंयुगों तक जीवित रह सकता है वह अमर

हो गया। पर, नीचे अथर्ववेदके दूसरे मन्त्रों को लिख रहे हैं जिसमें साफ २ शरीर को अमर कहा गया है।

उत्क्रामातः पुरुष मावपत्थाः
मृत्योःपड्वीशमवमुञ्चमानः।
माच्छित्था अस्माल्लोकादग्नेः
सूर्यस्य संदृशः का० ८ मंत्र ४॥

हे (पुरुष) पुरुष इस देहरूप पुरमें वास करनेवाले जीव (अतः) इससे (उत्क्राम) उन्नतिकर (मा अवपत्थाः) नीचे मत गिर और मन तथा आत्माको उन्नत वना कर उच्च विश्वास द्वारा (मृत्योः) मृत्यु की (पड्वीशम्) वेड़ी को (अवमुञ्चमानः) तोड़ता हुआ (अस्मात् लोकात्) इस लोकसे (माछित्थाः) सम्बन्ध मत तोड़ और "अमरहोकर" (अग्नेः) अग्नि अर्थात् भीतर जीवन की गर्मी प्राण का और वाहर (सूर्य्यस्य) सूर्य का (संदृशः) दर्शन कर।

हमारे प्रिय पाठक इसपर विचार करें। वेद के इस मन्त्रका दूसरा अर्थ नहीं हो सकता। साफ कहा है कि "मृत्योः पड्वीशं मुञ्चमानः अस्माल्लोकात् माच्छित्थाः" मृत्यु की वेड़ी को तोड़ते हुए इस लोक से या इस शरीर से सम्बन्ध मत तोड़। क्या इसका अर्थ यह हो सकता है कि १०० वर्षों के वाद मर जा और परलोक में जाकर अमर हो? इसमें तो साफ कहा है कि इस-लोक से सम्बन्ध मत तोड़ और सम्बन्ध को छुड़ाने वाली मृत्यु की वेड़ी को तोड़ दे।

इस मन्त्र में एक तरह से मन, और जीवन की गर्मी प्राणका दर्शन तथा सूर्य्य को देखने या उसको उपयोग करने की बात कहके अमर होने का साधन भी कह दिया है। पर यहां पर इस लेखमें उसका वर्णन नहीं हो सकता। इसका साधन जानने के लिए हमारी "योगसाधन" नामकी पुस्तक ज्ञानशक्ति प्रेस से मंगाकर पढिए।

सूर्य्य के प्रकाश अथवा उसके किरणों में अद्भुत गुण है। मन, प्राण और सूर्य यह तीनों मिलकर मनुष्य को अमर बना सकते हैं। अथर्व वेदके नीचे के मन्त्र को देखिए।

सूर्यस्ते तन्वेशं तपातित्वां
मृत्युर्दयतां माप्रमेष्ठाः॥ कां॰ ८ सू॰ १ मं॰ ५॥

(तेतन्वम्) तेरे शरीर के लिए (सूर्यः) सूर्य (शम्) कल्याण कारी होकर (तपाति, तपे और (मृत्युः) मृत्यु (त्वां) तेरी (दयतां) रक्षा करे और तू (माप्रमेष्टाः) 'कभी' न मरे।

यह मंत्र भी शरीर की अमरता पर बहुत ही स्पष्ट रूप में है। इसमें सूर्य द्वारा शरीर को अमर बनाने का उपाय भी है। सूर्य के किरणों का यदि उचित रूप से शरीर पर उपयोग किया जाय तो शरीर मृत्यु को जीत सकता है। पर सूर्य्य प्राण और जीवात्मा को भी कहते हैं। जैसे सूर्य्य के प्रकाश से सारा संसार प्रकाशित होता है उसी तरह पर आत्मासे सारा शरीर प्रकाशित रहता है। जैसे संसार को सूर्य्य से गर्मी मिलती है उसी तरह से शरीर को

आत्मा से गर्मी मिलती है और इसके निकल जाने से सारा शरीर ठंढा हो जाता है।

शरीर भी ब्रह्माण्ड का एक छोटा नमूना है। यह भी एक ब्रह्माण्ड है। जैसे बाहर के ब्रह्माण्ड का जीवन प्राण सूर्य्य है उसी तरह से शरीर के भीतर का जीवन प्राण आत्मा है। आत्मा से मतलब यहां शरीर की जीवनी शक्ति से है। आत्मबल और मनोबल द्वारा मनुष्य किस तरह से अमर होकर मृत्यु को जीत लेगा इसका वर्णन विस्तार से अगले लेखों में हो चुका है। इच्छा-शक्ति, मनोबल और आत्मबल तीनों एक हैं। इनकी महिमा बहुत बड़ी है। ये शरीर को, नीरोग, युवा, बलवान् सुन्दर और अमर बना सकते है। इच्छाशक्तिका उपयोग करना सीखिए और अमर हो जाइए ऊपर के मन्त्र का यही तात्पर्य है।

नीचे अथर्ववेद के और भी मन्त्र दिए जाते हैं उन्हें पढकर इनके भावार्थ पर विचार कीजिए। देखिए, कितने स्पष्ट शब्दों में वेदने कल्पनाशक्तिद्वारा अमरता की सम्भावना को मनुष्य जातिके लिए स्वीकार किया है। अब हम प्रत्येक मन्त्रके नीचे अपने इन सिद्धान्तों को व्यक्त करना नहीं चाहते किन्तु पाठकों को चाहिए कि वे स्वयम् इन मन्त्रों पर विचार करें और यदि हमारे पाठक विचार करेंगे तो वह स्वयम् हमारे इस अमृतत्वके सिद्धान्तोंपर पहुंचजायंगे।

आत्मा तो अमर है ही, पर इतने ही से मनुष्य को संतोष नहीं है। मनुष्य जाति नित्य नए २ आविष्कारों को करती हुई आगे बढती जा रही है। पर, यदि एक दिन मरना ही है तो सारे आविष्कार, सारी उन्नति, सारा धन, सारी प्रतिष्ठा और सारे अधिकार व्यर्थ हैं। इस बातको मनुष्य खूब समझ रहे हैं और अब सभ्य संसार में स्वास्थ्य की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। इतना ही नहीं सब स्वाभाविक रूपमें चाहते हैं कि हम अमर हो जायँ और इसका यत्न भी हो रहा है। पतिव्रता स्त्रियां पुनर्जन्म परलोक और धर्म के विचार से पहले सती हो जाती थीं पर अब बहुत दिनों से यह सब विचार ढीले पड़ गए। उधार के भरोसे अब कोई नक़द को छोड़ना नहीं चाहता। परलोक और धर्म के नामपर भी अब लोग जान देने के लिए हृदय से तैयार नहीं है। अब स्त्रियां हृदय से सती नहीं होना चाहती। अतः इस जमाने में भी अंग्रेजों के आने के पहले लोग विधवा स्त्री को मार मार के विवश कर बलात् पति की चितापर जलने के लिए डाल देते थे। पर, अंग्रेजों ने उसे रोक दिया। पुनर्जन्म को मानते हुए इतना तो मानना ही पड़ेगा कि शरीर को बदल देने से बहुत बड़ी हानि यह होती है कि एक जन्मका परिश्रम से उपार्जन किया हुआ ज्ञान दूसरे जन्म में स्मरण नहीं रहता और दूसरे जन्म में फिर से उतनाही परिश्रम करना पड़ता है। अधिक से अधिक इतनाही होता है कि उसका संस्कार बना रहता है और ज्ञानी को दूसरे जन्ममें

ज्ञानके उपार्जनमें कुछ कम परिश्रम पड़ता है, फिर भी, और, संस्कार रहने पर भी, उसे फिर नए मस्तिष्क में नये रूपसे लाने के लिए बहुत परिश्रम करना पड़ता है। और दूसरी बात यह है कि ऐसे विचारशील ज्ञानियों की आयु जितनी ही अधिक हो वे उतनाही अधिक ज्ञानोपार्जन कर सकेंगे। जितनी ही अधिक आयु होगी उतना ही अधिक संसार का उपकार कर सकेंगे और अपने अनुभव पूर्ण ज्ञानका उतनाही अधिक प्रचार लिख और बोलकर कर सकेंगे। मर जाने से सब अधूरा रह जाता है। और मर जाने से संसार में जो ज्ञान है वह अबतक अधूरा और अनुभवहीन है। ज्ञानोपार्जन, अनुभवलाभ और ज्ञानोपदेश की दृष्टि से शरीर को स्वस्थ, बलवान् और अमर बना देना आवश्यक है। यदि ज्ञानियों और विचारशीलोंकी आयु बहुत बड़ी हुई होती तो उससे संसारका अनन्त लाभ होता और असंख्य वर्षों का यह अनुभवजन्यज्ञान बहुत ही विचित्र होता। इसी बात को लेकर अथर्ववेदने भी शरीर को अमर बनानेका उपदेश दिया है। वेदों में यह बड़ी विचित्रता है कि उसने शरीर को भी अमर बना डालना असम्भव नहीं माना है।

आहिरोह ममममृतं सुखंरथमथ

जिर्विर्विदथ मावदासि ॥ का० ८ सू० १ मं० ६ ॥

(इमम्) इस (अमृतम्) अमर (रथम) रमण का साधन शरीरको (सुखम्) सुखसे (हि) निश्चय (आरोह) धारण कर और (जिर्विर्विदथम्) अनेक वर्षके अनुभव जन्य ज्ञान को (आवदासि) सर्वत्र उपदेश कर।

इस मंत्र में वही पूर्वोक्त बातें कितने स्पष्ट रूपमें कही गई हैं। शरीर को साफ अमर बनाने को कहा और क्यों अमर बनाया जाय इसका कारण भी दे दिया। अर्थात् जिसमें अनेक वर्षों के सच्चे और अनुभव जन्य ज्ञानका हम संसार में प्रचार कर सकें। नीचे के मंत्रमें बुढापा और मृत्यु दोनों को दूर करने के लिए कहा है। यह अथर्ववेद के काण्ड दो और सूक्त १३ का मंत्र है।

परिधत्त धत्तनो वर्चसेमं जरा मृत्यु

कृणुत दीर्घमायुः॥ का० २ सू० १३ मंत्र २॥

(इमं) इस शरीर को (वर्चसा) आत्मबल या मनोबल द्वारा (परिधत्त) परिपुष्ट करो पर, (जरामृत्युम्) जरा और मृत्यु को (नो) न (धत्त) धारणकर किंतु इस तरह से (दीर्घमायुः) दीर्घ आयुको (कृणुत) धारण कर। इस मंत्र के भी अर्थोंपर विचार कीजिए। इस मंत्रमें यह भी कहा हुआ है कि हम इस उपाय से जरा (बुढापा) और मृत्यु दोनों को जीत सकते हैं।

माते प्राण उपदसन्मा अपानोपि धायिते।

सूर्यस्त्वाधिपतिर्मृत्योरुदायच्छतुरश्मिभिः ॥१५॥

(ते प्राणः) तेरा प्राण (माउपदसत्) विनाश को प्राप्त न हो और (तेअपानः) तेरा अपान (मा अपिधायि) भी कभी न रुके अर्थात् तेरा श्वासोच्छ्वास कभी बंद न हो और इस तौर पर तू कभी न मरे (अधिपतिःसूर्यः) सबका मालिक सूर्य वा जगत् का मालिक

आत्मा (त्वा) तुमको (रश्मिभिः) सद्विचारों की वृत्तियों द्वारा (उद्-आ-यच्छतु) ऊपर उठावे ।

आगे के मंत्रों में मन वा इच्छाशक्ति को सहस्त्रवीर्य कहा है; क्योंकि मनका बल अनंत और अपार है । इस मनोबल द्वारा शरीर को भी अमर बना लेना असम्भव नहीं है ।

अयं देवा इहैवास्त्वयं मामुत्रगादितः ।

इमं सहस्त्रवीर्येण मृत्यो रुत्पारयामसि ॥ कां० ८ सू० १ मं० १८ ॥

हे (देवाः) "ब्रह्मज्ञान के जानने वाले" ब्राह्मणो (अयम्) यह पुरुष (इह एव अस्तु) 'सर्वदा' यहीं इसी संसार में वा शरीर में रहे (इतः) यहां से (अमुत्र) दूसरे लोकमें या परलोक में (मागात्) न जाय (सहस्त्रवीर्येण) जिसमें हजारों प्रकार की वृत्तियां शक्तियां और बल हैं वह सहस्त्रवीर्य अर्थात् मन (मृत्युः) मृत्यु से(उत्पारयामसि) ऊंचे उठावे या छुड़ावे अथवा मृत्यु को उखाड़ कर फेंकदे ।

व्यावात् ते ज्योतिरभूदयत्त्वत् तमोअक्रमीत्

अपत्वन्मृत्युं निऋतिमप यक्ष्मं निदध्मसि ॥ २१ ॥

(ते) तेरे लिए (ज्योतिः) इच्छाशक्ति और ज्ञान (व्यावात्) विशेपरूप से प्रकट होकर (तमो अक्रमीत्) अज्ञानको पार करता हुआ (अभूत) आता है और (त्वत्) तुमसे (निऋतिम् मृत्युम्)दुःखकारी मृत्यु को और (यक्ष्मम्) रोग को (अपनिदध्मसि) दूर करते हैं ।

मतलब यह है कि इच्छाशक्ति और सत्यज्ञान अज्ञान को दूर कर मनुष्य को नीरोग और अमर बना देता है।

तुभ्यंवातः पवतां मातरिश्वा तुभ्यं वर्षन्त्वामृतान्यापः
सूर्यस्ते तन्वेशं तपातित्वां मृत्युर्दयतां मा प्रमेष्ठाः॥

॥ का० ८ सू० १ मं० ५ ॥

(तुभ्यं) तेरे लिए (मातरिश्वावातः) अन्तरिक्ष में चलनेवाली वायु (पवतां) बहती रहे और (आपः) जल (अमृतानि) अमृत (वर्षन्तु) बरसावें (तेतन्वम्) तेरे शरीर के लिए (सूर्यः) सूर्य्य (शम्) कल्याणकारी होकर (तपाति) तपे और (मृत्युः) मृत्यु (त्वां) तेरी (दयता) रक्षा करे और तू (मा प्रमेष्ठाः) कभी न मरे अर्थात् अमर हो जा।

वायु जल और सूर्य्य का उपयुक्त सेवन यदि अमरता पर विश्वास करके किया जाय और इच्छाशक्ति पर विश्वास करके शरीर से इस मंत्र के अनुसार कहा जाय कि तू अमर हो जा तू मृत्यु को जीत ले तो सचमुच यह शरीर अमर हो जायगा।

अयं जीवतु मामृतेमं समीरयामसि।
कृणोम्यस्मै भेषजं मृत्योमापुरुषंवधीः॥

॥ का० ८ सू० २ मं० ५ ॥

(अयम्) यह मनुष्य (जीवतु) जीवे (मामृत) कभी न मरे हम (समूईरयामः) अच्छी तरह से जीवन गति प्रदान करते हैं

(अस्मै) इसके लिए (भेषजं कृणोमि) दवा करते हैं अतः हे (मृत्यो) मृत्यु तू (पुरुषम्) पुरुष को (मावधीः) कभी मत मार।

कृणोमिते प्राणापानौ जरां मृत्युं दीर्घमायुः स्वस्ति।
वैवस्वतेन प्रहितान् यमदूतांश्चरतोपसेधामि सर्वान्॥का ८मं११

(ते प्राणापानौ) तेरे लिए प्राण और अपान को (कृणोमि) करता हूं। (वैवस्तेन) सूर्य्य से (प्रहितान्यमदूतान्) भेजे हुए यमदूतों से अर्थात् रोग के जीवाणुओं से और (जरांमृत्युं) और जरा को तथा मृत्यु को (अपसेधामि) दूर करता हूं अतः तेरे लिए (दीर्घमायुः) यह बड़ी आयु (स्वस्ति) कल्याणकारी हो।

यहीं तक नहीं यदि वेदपर विश्वास किया जाय तो वेद ने स्पष्ट कह दिया है कि तू अमर है, अतः डर को हृदय से निकाल दे, मैं सच कहता हूं कि तू कभी नहीं मरेगा कभी नहीं मरेगा। देखिए ऐसा एक अथर्ववेद का मंत्र नीचे दिया जाता है।

सोऽरिष्ट न मरिष्यसि न मरिष्यसि माविभेः।
न वै तत्र म्रियन्ते नो यन्त्यधमंतमः॥
॥ का० ८ सू० २ मं० २४॥

हे (अरिष्ठ) हिंसा से मुक्त अविनाशी मनुष्य (न मरिष्यसि न मरिष्यसि) तू कभी नहीं मरेगा कभी नहीं मरेगा (माविभेः) मत डर (स) वह (तत्र) ऐसी दशा में इस तरह से विश्वास के साथ निर्भीक हो जानेपर (न वैम्रियन्ते) निश्चय करके कभी नहीं मरता और (नो) न (अधमंतमःयन्ति) नरकलोक को जाता है। नरक से मतलब दुःख और रोग की अवस्था से है।

मृत्युरीशेद्विपदां मृत्युरीशेचतुष्पदाम्
तस्मात्त्वां मृत्योर्गोपते उद्भरामि समाबिभेः॥
का० ८ सू० २ मं० २३॥

(मृत्युः द्विपदां चतुष्पदाम्) मृत्यु दो पैर वालों और चार पैर वालोंपर (ईशे) शासन करतो है पर इससे क्या हे (गोपते) मन और इच्छाशक्ति को अपने वस में करके उससे काम लेनेवाले पुरुषों (त्वाम्) तुझे (मृत्योः) मृत्यु के पाश से मैं (उद्भरामि) ऊपर उठाकर छुड़ा लेता हूं (तस्मात्) इसलिये (मा बिभेः) मत डर।

उत्त्वा द्यौरुत् पृथिव्युत् प्रजापतिरग्रभीत्।
उत्त्वा मृत्योरोषधयः सोमराज्ञीरपीपरन् ॥१७॥

(द्यौः) आकाश, सूर्य, मन वा आत्मा (त्वा) तुमको (मृत्योः) मृत्यु से (उत्अग्रभीत्) ऊपर उठावे और बचाये रहें (पृथिवी उत्-अग्रभीत्) पृथिवी वा इच्छाशक्ति भी तुमको मृत्यु से ऊपर उठाये या बचाये रहे (प्रजापतिः) प्रजाका स्वामी भी त्वा उत् अग्रभीत। तुमको मृत्यु से बचावे (ओषधयः) औषधियां (सोमराज्ञीः) सोमलता या जिनके राजा सोम हैं (त्वा मृत्योः) तुमको मृत्यु से (उत् अपीपरन्) ऊपर उठावें और बचावें।

अथर्ववेद के ये मन्त्र बहुत ही विचारणीय हैं। इसपर बार बार विचार करना चाहिए इनमें शरीर की अमरता का गुप्त रहस्य छिपा हुआ है।

योगेश्वर शिवकुमार जी

की रची हुई अद्भुत पुस्तकें।

१—नीरोग रहने का अद्भुत उपाय। मूल्य १)

२—योगसाधन (पचासों चित्रों के साथ जिसे प्रत्येक गृहस्थ, प्रत्येक मनुष्य, रोगी, निर्बल, युवा और बालक भी बिना गुरु के कर सकेगा) यह योग विषय का बहुत ही बड़ा और सर्वांगपूर्ण ग्रंथ है। मूल्य २॥)

३—शरीर से अमर होने का उपाय (आत्मा तो अमर है ही इसमें सचमुच शरीर से अमर होने का उपाय है) बहुत ही विचित्र पुस्तक है। मूल्य १॥)

४—वेदान्त-सिद्धान्त (इसमें उन्हीं सिद्धान्तों का वर्णन है जिसने यूरोप और अमरीका में भी हलचल मचा रक्खा है। मूल्य १।)

५—शान्तिदायी विचार (यदि आप जीवन्मुक्त होकर सर्वदा प्रसन्न, सुखी और आनन्द से पूर्ण रहना चाहते हैं तो इसे अवश्य पढ़िए। १)

६—साप्ताहिक ज्ञानशक्ति (यही एक साप्ताहिक पत्रिका है जिसमें, योग, मेस्मेरिजम, इच्छाशक्ति, मनोबल, आत्मबल और योग पर अच्छे से अच्छे लेख प्रत्येक सप्ताह में रहते हैं। मूल्य ३) वार्षिक

हमारा पता:—

ज्ञानशक्ति प्रेस, गोरखपुर, यू० पी०

सचित्र

योगसाधन

जिसे प्रत्येक गृहस्थ बिना गुरु के कर सकेगा।

योगसाधन का नाम सुनते ही लोग घबड़ा जाते और यह सोचने लगते हैं कि इसे हमारे ऐसे गृहस्थ, व्यापारी, क्लर्क या वकील नहीं कर सकते। यह धारणा निर्मूल है। इस योगसाधन नामक ग्रंथ में यह सिद्ध कर दिया है कि योग गृहस्थही कर सकते हैं; गृहहीन और इधरउधर घूमने वाले साधु नहीं। योगसाधन पर अनेक ग्रंथ छप चुके हैं पर अभी तक ऐसा सुबोध, सरल और सर्वांगपूर्ण ग्रंथ कहीं नहीं छपा। योग ग्रंथोंके कितने लेखक और टीकाकार ऐसे हैं कि उन्होंने स्वयम् उसका साधन नहीं किया है। जिसने स्वयम् योगका साधन नहीं किया उनके लेख साधकोंके समझमें नहीं आते और न ऐसे लेखोंके पढ़नेसे साधकोंका कुछ लाभ होता है। केवल शब्दाडम्बर से योगका विषय समझमें नहीं आ सकता। पर इस ग्रंथके लेखकस्वयम् आज ३२ वर्षों से योगका साधन कर रहे हैं। और योगके प्रत्येक अंगका अच्छी तरहसे अभ्यास करके इसके लाभ हानिको जानकर इसग्रंथको लिखना आरंभ किया है। अतः यह ग्रंथ बहुत ही सरल, बहुत ही सुबोध और बहुत ही उपयोगी बना है। जहां २ चित्रोंकी आवश्यकता है वहां २ चित्र भी दे दिएगए हैं। आसनोंके पचासों मनोहर और सुन्दर चित्र हैं। राजयोग, हठयोग, कर्मयोग, मंत्रयोग, ध्यानयोग और अष्टांगयोग आदि कोई विषय छूटा नहीं है। यदि आपसर्वदा नीरोग, सुन्दर, बलवान् बुद्धिमान् और युवा रहकर मृत्यु पर भी विजय लाभ करना चाहते हैं तो इस पुस्तक को अवश्यपढ़िए। मूल्य केवल २॥) ढाई रूपया।

मिलनेका पता-मैनेजर "ज्ञानशक्ति प्रेस" गोरखपुर।

शरीर से

अमर होने का उपाय

आत्मा तो अमर है ही। इस पुस्तक में शरीर से भी अमर होने का उपाय है। अमरही नहीं मनुष्य सर्वदा नीरोग, युवा, सुन्दर, बलवान्, मेधावी और भाग्यवान भी बना रहेगा। यह झूठ नहीं सत्य है। इसके लेखक ज्ञानशक्ति साप्ताहिक पत्रिका के सम्पादक योगसाधन के रचयिता योगी शिवकुमार जी शास्त्री हैं। उपाय बहुत ही सरल और सुगम है। इसे बालक वृद्ध रोगी सभी कर सकते हैं। यह ग्रन्थ इस बीसवीं सदीका एक अद्भुत आविष्कार है। इसके अमूल्य उपायों को पढ़कर रोग और मृत्यु पर विजय लाभ कीजिए। सच्ची बात यह है कि इस पुस्तक ने साहित्य संसार में हलचल मचा दिया है। इसका पहला संस्करण समाप्त हो चुका। यह उसका द्वितीय संस्करण है। इसमें बहुत से नवीन अध्याय बढ़ा दिए गए हैं। फिर भी ऐसे उपयोगी ग्रन्थ का मूल्य प्रचार के लिए केवल १।।) डेढ़ रुपया रक्खा गया है। डाक व्यय अलग।

मिलने का पता: – मैनेजर "ज्ञानशक्ति प्रेस" गोरखपुर।

नीरोग होने का अद्‌भुत उपाय ।

यह वह ग्रंथ है जिसने चिकित्सा संसार में हलचल मचा दिया है । वैद्य, हकीम और डाक्टर इसे देखकर चकित हो गए हैं । यह एक पुस्तक आपका हजारों रुपया जो वैद्यों, डाक्टरों, हकीमों और ओषधियों में खर्च हो जाता था बचा देगी । नयी बात है, नवीन सिद्धान्त है, और नीरोग, सुखी, जीवन्मुक्त, युवा, सुन्दर और बलवान् बने रहने का एक अद्‌भुत और सरल उपाय है। इसके पढ़ने से हृदय में एक नयी शक्ति आवेगी, सारा रोग शरीर से निकल जायगा और मन प्रफुल्लित और प्रसन्न रहेगा। उपाय बहुत ही सरल, सहज, वेदामका, प्राकृतिक और स्वाभाविक है । ओषधियों और डाक्टरों से यदि आप ऊबकर निराश हो चुके हैं तो इस पुस्तक को अवश्य पढिए। यदि आप पुष्ट और नीरोग हैं तब भी अपने बल, आरोग्य और सुन्दरता को स्थायी बनाने के लिए और उसमें और भी उन्नति देने के लिए इसे अवश्य पढिए। यह पुस्तक ज्ञानशक्ति के सम्पादक द्वारा लिखी गई है जो इस विषयके ज्ञानमें संसारप्रसिद्ध हो रहे हैं। इस अमूल्य रत्न का मूल्य केवल १) एक रुपया है । यह पुस्तक अङ्गरेजी में भी छप रही है।

मिलने का पता:—मैनेजर "ज्ञानशक्ति प्रेस" गोरखपुर। यू०पी०

वेदान्त-सिद्धान्त

वेदान्त की इस फिलासोफी ने यूरोप और अमरीका में भी हलचल मचा दिया है। अमरिका वाले वेदान्त के इन सिद्धान्तों से चकित होकर धड़ाधड़ वेदान्ती होते जा रहे हैं। इस पुस्तक की नयी युक्तियां और प्रबल प्रमाणों को देखकर आपका चित्त भी फड़क उठेगा।

फिलासफी, ब्रह्मज्ञान और वेदान्त की ऐसी अच्छी पुस्तक हिन्दी में आजतक कहीं नहीं छपी। हजारों प्रशंसा पत्रों में से केवल एक मुसलमान सज्जन की राय पढ़िए:—

"मैं जातिका मुसलमान हूं और अपने मजहब का कट्टर भी था। पर 'शान्तिदायी-विचार' और 'वेदान्त-सिद्धान्त' के पढ़ने से मेरे खयालात बिलकुल बदल गए। मेरे हृदय को केवल इन्हीं पुस्तकों के पढ़ने से शान्ति मिली। और कहां तक कहूं शोक और दुःख के सागर में डूबते हुए इन्हीं दो पुस्तकों ने बचा लिया।

द० अबदुल लतीफ खां क्लर्क म्युनिस्पैल्टी, धारस्टेट।

आपने श्रीयुत अबदुललतीफ खां की बातें पढ़ लीं। अतः इस वेदान्त-सिद्धान्त और शान्तिदायी विचार ऐसे अपूर्व पुस्तक को अवश्य मंगाइए। शान्तिदायीविचार का मूल्य १) एक रुपया और वेदान्त-सिद्धान्त का १।) सवा रुपया है।

मिलने का पताः- मैनेजर ज्ञानशक्ति प्रेस, गोरखपुर। यू०पी०

शान्तिदायी-विचार

इसमें निम्नलिखित विषयों पर बहुत ही अपूर्व, विचित्र और शान्तिदायी लेख हैं। इसको सूची निम्नलिखित प्रकार से है।

१-ईश्वर का प्रत्यक्ष दर्शन।
२-भाग्य फेरने का उपाय।
३-योग।
४-समाधि।
५-शान्तिलाभ के उपाय।
६-प्रेम का रहस्य।
७-हमारी आत्मा।
८-खेल की महिमा।
९-आनन्द का पता।
१०-अहंकार का रहस्य।
११-स्वास्थ्य-रक्षा।
१२-धन प्राप्ति के उपाय।
१३-आशा और सफलता।
१४-भावना द्वारा आरोग्य लाभ।
१५-गुप्त सिद्धियों को प्राप्त करने का उपाय।
१६-मनोरथपूर्ण करने की कुंजी
१७-मृत्यु को जीतने का संक्षिप्त उपाय

उपर्युक्त विषय सूची को पढ़ जाइए। इससे आप स्वयम् अन्दाजा कर सकते हैं कि यह ग्रन्थ कितना उपयोगी कितनालाभदायक और शान्तिदायी है। मूल्य केवल १) एक रुपया।

मिलने का पता—मैनेजर ज्ञानशक्ति प्रेस, गोरखपुर।
यू॰ पी॰

साप्ताहिक पत्रिका

ज्ञानशक्ति

संसार में इस वक्त एक नवीन ज्ञानका प्रचार हो रहा है। वह ज्ञान यह है कि मनुष्यका मन बहुत ही अद्भुत शक्ति वाला है। अतः मनुष्य अपने मनोबल, इच्छाशक्ति, ज्ञान और योग के प्रयोगों द्वारा बिना किसी ओषधि के भी सर्वदा नीरोग, युवा, सुन्दर, बुद्धिमान, बलवान्, धनवान्, सुखी और भाग्यवान बना रह सकता है। इसी ज्ञान और विषय के प्रचार के लिए यह "ज्ञानशक्ति" नाम की पत्रिका गोरखपुर से निकाली गई है।

इसके सम्पादक "योग-साधन", "शरीर से अमर होने का उपाय", "शान्तिदायी विचार", "नीरोग, होने का अद्भुत उपाय" आदि अनेक ग्रंथों के रचयिता श्रीमान् पं० शिवकुमार जी शास्त्री हैं जो इस बीसवीं सदी में इस विषय के सबसे अधिक जानकार हैं। "ज्ञानशक्ति" साप्ताहिक निकलती है। अतः पूर्वोक्त अद्भुत विषयों के अलावा ताज़े समाचार, मनोरञ्जन केलिए चित्ताकर्षक गल्प तथा कहानियां और वर्त्तमान राजनीति पर निष्पक्ष, निर्भीक और ज़ोरदार लेख भी रहते हैं। आप इसे खूब पसन्द करेंगे।

अतः आजही निम्नलिखित पतेसे हमारे पास एक पत्र लिखकर इस पत्रिका के ग्राहक बन जाइए। इस साप्ताहिक ज्ञानशक्ति का अग्रिम वार्षिक मूल्य केवल ३) तीन रूपया है। बहुत उत्तम तो यह होगा कि निम्नलिखित पते से मूल्य मनिआर्डर द्वारा भेज दें।

पताः—मैनेजर ज्ञानशक्ति प्रेस, गोरखपुर।

इच्छाशक्ति ।

इच्छाशक्ति को अङ्गरेजी में Will-Power या Will Force कहते हैं। इसी को आत्मबल Soul-Power और मनःशक्ति Mind Power भी कह सकते हैं। मनोविज्ञान और गुप्त विद्या का सब से उपयोगी विषय यही है। यूरोप और अमरीकादि देशों में इसी इच्छाशक्ति से बहुत बड़े २ काम लिए जाते हैं। व्यापार को चलाने के लिए, प्रभावशाली व्याख्यान देने के लिए, सर्व प्रिय बनने के लिए और लोगों को वश में करने के लिए, इच्छाशक्ति, का ही प्रयोग हो रहा है। 'इच्छाशक्ति' नाम की इस पुस्तक में इन्हीं सब उपायों, साधनों और नियमों का वर्णन है। वशीकरण मन्त्र से जो काम नहीं निकल सकता वह इससे निकलेगा। अनेक तंत्र मंत्र जहां कुण्ठित हो जायंगे वहां भी यह इच्छाशक्ति अपना प्रभाव दिखावेगी। अब इन सब शक्तियों के लिए बारह २ वर्ष हिमालय में जाकर साधुओं को तलाश करने की जरूरत नहीं रही। इस पुस्तक को पढिए आपका मनोरथ पूर्ण होगा। मूल्य केवल १)

पता:—"ज्ञानशक्ति प्रेस", गोरखपुर, यू० पी०

नीरोग होनेका अद्भुत उपाय।

दवा नहीं; एक पुस्तक है।

यदि आप विना औषधिके, विना कुछ खर्च किए, सर्वदा नीरोग, स्वस्थ, युवा, पुष्ट, सुन्दर, प्रसन्न, और सुखी रहना चाहते हैं तो इस पुस्तकको अवश्य देखिए। यह पुस्तक आपका हजारों रुपया बचा देगी। औषधियोंको निकालकर फेंक दो, डाक्टरोंको जवाब दे दो। इस पुस्तकको अवश्य पढ़ो। यह पुस्तक आपके सारे रोगों, दोषों, दुःखों और कष्टोंको दूर कर देगी। मूल्य केवल १) एक रुपया।

पुस्तक मिलनेका पताः—

मैनेजर—

"ज्ञानशक्ति प्रेस," गोरखपुर।

सत्य, सुन्दर
और
स्वतन्त्र विचार

इस ग्रन्थने विद्वन्मण्डलीमें और संसारके विचारक्षेत्रमें हलचल मचा दिया है। संसारके बड़े २ विद्वान्, और बड़े २ ब्रह्मज्ञानी भी, इसे पढ़कर चकित हो गए हैं। योगसाधनादि अनेक पुस्तकोंकी रचनाके पश्चात् इस विषयके संसार प्रसिद्ध लेखक योगिराज श्री पं० शिवकुमार शास्त्रीने अन्तमें इस पुस्तकको लिखा है। इस ग्रन्थके एक २ वाक्य अमूल्य और अथाह ज्ञानसे भरे हुए हैं। इस ग्रन्थका अद्भुतज्ञान इतना अकाट्य सत्य है—इतना विचार पूर्ण है—इतना युक्तियुक्त और प्रबल प्रमाणोंसे परिपूर्ण है कि एक बार जो इस ग्रन्थको पढ लेगा उसके सामने बड़ेसे बड़े तार्किक, एक क्षण भी नहीं ठहर सकेंगे। व्याख्यानदाता इसे पढ़कर बहुत ही प्रभावशाली और विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान दे सकेगा। पंडितोंको यदि अपना पाण्डित्य सर्वोच्च शिखरपर पहुंचाकर सूर्य्यवत् प्रकाशित करना है तो इसे एक बार अवश्य पढ़ लें। इस ग्रन्थका ज्ञान इतना दिव्य और पवित्र है कि पढते ही सारी शंकायें दूर हो जाती हैं और हृदयमें सत्यज्ञानका पूर्ण प्रकाश हो जाता है। यही एक पुस्तक है जिसे पढ़कर मनुष्य सचमुच जीवनमुक्त, आनन्दमय और ब्रह्ममय हो सकता है। इस अपूर्व, अलभ्य, दिव्य और पवित्र ज्ञानके भण्डारका मूल्य केवल २॥) रूपया है।

पता:—मैनेजर "ज्ञानशक्ति प्रेस," गोरखपुर।